स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

MAST-01
वैदिक वाङ्मय

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

द्वितीय खण्ड

निरूक्त एवं उपनिषद

विश्वविद्यालय परिसर
शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद-211013

खण्ड

2

निरूक्त एवं उपनिषद

इकाई - 7 5

निरूक्त केनोपनिषद एवं वैदिक वाङ्मय का सामान्य अध्ययन

इकाई - 8 12

निरूक्त प्रथम अध्याय 1-5 पाद व्याख्या

इकाई - 9 46

केनोपनिषद् - व्याख्या एवं बोध प्रश्न

इकाई - 10 54

वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का सामान्य परिचय एवं बोध प्रश्न

इकाई - 11 67

केनोपनिषद् - आरण्यकों एवं उपनिषदों तथा वेदाङ्गों का सामान्य परिचय एवं बोध प्रश्न

खण्ड-दो : निरूक्त एवं उपनिषद

इस पाठ्यक्रम में दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड को दो भागों में विभक्त किया गया है। द्वितीय खण्ड में पाँच इकाईयाँ हैं। प्रथम इकाई में निरूक्त, केनोपनिषद् एवं वैदिक वाङ्मय का सामान्य अध्ययन का परिचय है। दूसरी इकाई में निरूक्त के प्रथम से पाँच पाद तक की व्याख्या की गई है। तीसरी इकाई में केनोपनिषद् की व्याख्या एवं बोध प्रश्न दिये गए हैं। चौथी इकाई में वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का सामान्य परिचय दिया गया है। पाँचवी इकाई में केनोपनिषद् आरण्यकों एवं उपनिषद् तथा वेदाङ्गों का सामान्य परिचय दिया गया है।

करने में उत्तरवर्ती अध्येताओं को सरलता होने लगी।

वेदों से निकाल-निकाल एकत्र संग्रहीत किये गये वैदिक कठिन पदों के संग्रह का नाम ही निघण्टु रखा गया, तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा निघण्टु पदों की जो व्याख्या की गयी, उसी व्याख्यान-ग्रन्थ को "निरूक्त" के नाम से अभिहित किया गया, समय प्रवाह से अनेक आचार्यों ने निघण्टु ग्रन्थ पर अपनी-अपनी व्याख्यायों को, परन्तु सम्प्रति जो निरूक्त प्राप्त होता है, वह यास्क कृत निरुक्त माना जाता है, जो निरूक्तकारों की शृंखला में चौदहवें निरूक्तकार माने जाते हैं।

यास्क कृत निरूक्त में कुल 12 अध्याय प्राप्त होते हैं, बाद में परिशिष्ट के रूप में 13, 14वें अध्याय को भी जोड़ दिया गया; जिसमें मन्त्रों के आधेयज्ञ, अधिदैव, एवं आध्यात्म तीन प्रकार-के अर्थों का विनिश्चय किया गया है।

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में निरूक्त का प्रथम अध्याय रखा गया है। प्रथम अध्याय में कुल छः पाद पाये जाते हैं। पाठ्यक्रम की सरलता एवं सुगमता की दृष्टि से पञ्चम पाद तक ही पाठ्य विषय रखा गया है। प्रत्येक पाद का पाठ्यविषय यद्यपि एक-दूसरे से भिन्न प्रतीत होता है, फिरभी सभी पादों का आन्तरिक सम्बन्ध है, जिसे जानकर हम निरूक्तकार के आशय से परिचित हो सकते हैं, यहाँ पादों के क्रम से उनका वर्ण्य विषय प्रस्तुत किया जाता है।

7.5.1 प्रथम पाद

प्रथम पाद में सबसे पहले निघण्टु शब्द पर विचार किया गया है, वैदिक कठिन पदों का शब्द कोश कहे जाने पर नाम-आख्यात-उपसर्ग और निपात चार प्रकार के पदों का विभाजन दिखलाकर उनके लक्षण एवं उदाहरण बतलाये गये हैं। भाव को क्रिया का दूसरा अभिधान बतलाते हुए उनके जायते-अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति, इन छः प्रकार के विकारों का विचार किया गया है, इसी पाद में उपसर्गों के वाचकत्व एवं द्योतकत्वपक्ष का निरूपण दर्शाते हुए आचार्य गार्ग्य एवं शाकटायन के मतों का उल्लेख किया गया है।

7.5.2 द्वितीय पाद

द्वितीय पाद में निपातों का लक्षण और स्वरूप बतलाया गया है, तथा सम्पूर्ण निपातों को निम्नलिखित तीन संवर्गों में विभाजित का वैदिक मन्त्रों में उनके लक्षण दिखलाये गये हैं, पहला उपमार्थक निपात, दूसरा कर्मोपसंग्रहात्मकनिपात तथा तीसरा पद पूरणार्थक निपात।

7.5.3 तृतीय पाद

तृतीय पाद में यद्यपि निपातों के तीनों संवर्गों के लक्षण और उदाहरण द्वितीय पाद से प्रारम्भ किये गये हैं, परन्तु पदपूरणार्थ निपातों के विवेचन हेतु कुछ अव्यय पदों की चर्चा तथा उनके निपात-स्वरूप का विवेचन तृतीय पाद में किया गया है. मन्त्रों में आने वाले कुछ निपात पदों को अव्यय कोटि में नहीं माना गया है, क्योंकि उनका विभिन्न विभक्तियों में व्यय दिखलाया गया है।

7.5.4 चतुर्थ पाद

चतुर्थ पाद में नाम पदों के आख्यातज होने में अथवा न होने में दो आचार्यों तथा नैरूक्त एवं वैयाकरणों के मतों का विवेचन किया गया है। सभी नाम पद आख्यात से उत्पन्न होते हैं इस

के पोषक आचार्य-शाकटायन तथा प्राचीन निरुक्तकार हैं, जबकि कुछ वैयाकरण तथा आचार्य गार्ग्य के अनुसार सभी नाम पद आख्यात से उत्पन्न नहीं हो सकते हैं इस मत का विस्तार से विवेचन किया गया है।

7.5.5 पञ्चम पाद

पञ्चम पाद में वेदाध्ययन के लिए प्रथमतः निरुक्त के अध्ययन को आवश्यकता बतलायी गयी है, बिना निरूक्त के ज्ञान के मन्त्रों में अर्थज्ञान नहीं हो सकता है। मन्त्रों में आने वाले वैदिक पदों का भी सम्यक् अवबोध नहीं हो सकता, कठिन वैदिक शब्दों का निर्वचन जो अनवगत संस्कार होने के कारण व्याकरणादि ग्रन्थों से नहीं जाने जा सकते हैं, उनके भी अर्थ का ज्ञान कराने वाला निरुक्त ही होता है, अतः निरुक्त शास्त्र अपने उद्देश्य का साधक तथा व्याकरण शास्त्र का भी पूरक बतलाया गया है।

उपर्युक्त पांचों पदों का वर्ण्य विषय ही मुख्यतः पाठ्यांश के रूप में निर्धारित किया गया है, जिन्हें आगे के इकाईयों में विस्तार से निरूपित किया जायगा।

7.6 केनोपनिषद का सामान्य परिचय

मन्त्र और ब्राह्मण भाग दोनों को वेद पद से अभिहित किया जाता है, ईशावास्योपनिषद् को छोड़कर सभी उपनिषद् ब्राह्मण भाग के अंग हैं। केवल ईशावास्योपनिषद मन्त्रभाग का अंग है, प्रस्तुत केनोपनिषद् सामवेदीय शाखा के तवल्कार ब्राह्मण भाग का अंग माना जाता है, केनोपनिषद् के प्रथम मन्त्र के प्रथम पद को (केनेषितं प्रेरितं मनः) प्रतीक मानकर इसका नामकरण किया गया है। इसमें कुल चार खण्ड हैं, प्रारम्भ के दो खण्डों में सर्वाधिष्ठान विशुद्ध ब्रह्म के तात्विक स्वरूप का निर्देश विभिन्न लक्षण द्वारा बतलाया गया है, तत्पश्चात् अन्तिम दो खण्डों में ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिये यक्षोपाख्यान द्वारा परमेश्वर का सर्वप्रेरकत्व एवं सर्वकर्तृत्व सिद्ध किया गया है, इसकी वर्णनशैली अत्यन्त उदात्त एवं गम्भीर है इसके मन्त्रों में प्रसाद गुण है जिसके पाठमात्र से हृदय में एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है।

अन्य उपनिषदों की अपेक्षा केनोपनिषद की विशेष महत्ता है, क्योंकि भगवान आद्य शङ्कराचार्य ने एक ही सिद्धान्त की स्थापना के लिए इस दो प्रकार के भाष्य लिखे हैं, पहला केनोपनिषद् पदभाष्य, दूसरा केनोपनिषद् वाक्य भाष्य। उत्तरवर्ती कुछ टीकाकारों का मानना है कि सामवेदीय तवल्कार ब्राह्मण के इस केनोपनिषद् का पदभाष्य करके भी जब आद्य शङ्कराचार्य सन्तुष्ट नहीं हुये, तब पुनः उन्होंने युक्ति प्रधान श्रुतिवाक्यों के द्वारा श्रुति के तात्पर्य को बतलाने के लिए वाक्य भाष्य लिखा। इस प्रकार केनोपनिषद् के ऊपर पद भाष्य के पृथक् वाक्य भाष्य होने के कारण उपनिषदों में इसकी विशेष महत्ता बतलायी गयी है, पदभाष्य में मुख्यरूप से मूल मन्त्रों की पदशः व्याख्या की गयी है जबकि वाक्य भाष्य में पदशः व्याख्यान पर विशेष ध्यान न देकर श्रुति के तात्पर्य अर्थ को अनेकानेक युक्तियों से दर्शाया गया है, आगे की इकाई में केनोपनिषद् के दोनों भाष्यों को आधार मानकर उसका व्याख्यान किया जाएगा, जिससे परीक्षार्थी को अपने पाठ्यांश का भलीभांति परिज्ञान हो सके।

7.7 वैदिक वांङ्मय का सामान्य परिचय

वेद परमेश्वर की वाणी है, यह किसी पुरुष के द्वारा निर्मित ग्रन्थ नहीं है। प्राचीन काल के ऋषियों महर्षियों ने अपनी तपस्या से समाधिस्थ अवस्था में इनका साक्षात्कार किया था। उन्होंने पुनः अपने शिष्यों, प्रशिष्यों, पुत्रों एवं पौत्रों को उस अनुभूत ज्ञान राशि को प्रदान किया, प्रथमतः इस ज्ञान को श्रवणपरम्परा से सुरक्षित रखा गया, उत्तर-काल में ग्रहण एवं धारणा की क्षमता कम होने लगी, जिससे अध्ययन की सरलता हेतु उसे लिपिबद्ध करने की परम्परा प्रारम्भ हुई, जिन वेद शाखाओं को किसी कारण से लिपिबद्ध नहीं किया जा सका, वहीं शाखायें आज अनुपलब्ध दिखाई पड़ती है।

वेद का मौलिक अर्थ होता है ज्ञान, उस ज्ञान को अभिव्यक्त करने वाले आपौरुषेय शब्द राशि को भी वेद नाम से कहा जाता है। वस्तुतः वेद पहले त्रयी के रूप में एक ही था, त्रयी कहने का तात्पर्य है, कि उसमें गद्य, पद्य तथा गीत के अभिव्यञ्जक शब्द थे, परन्तु बाद में यज्ञ सौकर्म की दृष्टि से उसके चार भाग कर दिये गये जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद रखा गया।

वेद में प्रथमतः दो विभाग माने जाते हैं मन्त्र तथा ब्राह्मण, पुनः ब्राह्मण में तीन विभाग स्वीकार किये जाते हैं, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् वस्तुतः वेद की मूल शव्दराशि मन्त्र है, और ब्राह्मणादि उसी के व्याख्यान हैं, इस प्रकार प्रत्येक वेद में चार प्रकार का शाब्दिक विभाजन प्राप्त होता है, जिसे, मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद कहा जाता है, इन्हीं चारों विभागों में वैदिक वाङ्मय के नाम से कहा जाता है। आगे की इकाइयों में वेद के इन्हीं चारों भागों पर विस्तार से चर्चा की जाएगी तथा इनके सहयोगी ग्रन्थ, जिसे वेदाङ्ग कहा जाता है, उन पर भी विस्तृत विवेचन किया जाएगा। सामान्यतः प्रत्येक वेद की अपनी मन्त्र संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् प्राप्त होते हैं, परिगणना की दृष्टि से इन्हें निम्नलिखित रीति से जाना जा सकता है।

7.7.1 मन्त्र संहिता (शाखा)

महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार वेदों कीकुल शाखायें कभी (1131) एक हजार एक सौ एकतिस के रूप में प्रचलित थीं, जिनमें ऋग्वेद की 21 शाखायें, यजुर्वेद की 101 शाखायें, सामवेद की 1000 शाखायें, तथा अथर्ववेद की 9 शाखायें मानी जाती थीं, परन्तु आज वे सभी शाखायें उपलब्ध नहीं होती हैं। ऐसा माना जाता है कि भारत पर बार-बार विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण करने तथा बहुत कालतक भारत के परतन्त्र रहने के कारण बहुत सी वेदशाखायें या तो पठन-पाठन के अभाव में लुप्त हो गयी, या तो उसकी गुणवत्ता एवं वैज्ञानिकता की जानकारी होने पर किसी विदेशी द्वारा चुरा ली गयी या तो बर्बर आक्रान्ताओं द्वारा नष्ट कर दी गयी।

सम्प्रति वेद की जो शाखायें उपलब्ध होती हैं उनकी कुल संख्या 13 हैं, जो निम्नलिखित नामों से जानी जाती हैं ऋग्वेद की दो शाखायें - (1) शाकल शाखा, (2) वास्कलशाखा। यजुर्वेद का कालान्तर में कृष्ण यजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद के रूप में दो विभाजन हो गया, सम्प्रति कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखायें प्राप्त होती है। (1) तैत्तिरीयशाखा, (2) मैत्रायणी शाखा (3) कठशाखा (4) कपिष्ठल कठ शाखा, इसी प्रकार शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखायें प्राप्त होती हैं, (1)

काण्वशाखा, (2) माध्यन्दिन शाखा। सामवेद की अद्यतन तीन शाखा में प्राप्त होती हैं, (1) कौथुमी शाखा (2) जैमिनीय शाखा, (3) राणायणीय शाखा,अथर्ववेद की सम्प्रति दो शाखायें मिलती है (1) शौनक शाखा (2) पैप्लाद शाखा।

7.7.2 ब्राह्मण ग्रन्थ

आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार प्रत्येक वेद की सम्बद्धानुसार सम्प्रति ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या निम्नलिखित रूप में प्राप्त होती हैं।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ (1) ऐतरेय ब्राह्मण (2) शांखायन ब्राह्मण प्राप्त होते हैं। कृष्ण यजुर्वेद में केवल एक ब्राह्मण ग्रन्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण, तथा शुक्ल यजुर्वेद में भी केवल एक ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होता है। सामवेद में कुल आठ ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनके नाम हैं (1) ताण्डयब्राह्मण (2) षड्विंश ब्राह्मण, (3) सामविधान ब्राह्मण (4) आर्षेयब्राह्मण (5) दैवत ब्राह्मण (6) उपनिषद् ब्राह्मण (7) संहितोपनिषद् ब्राह्मण, (8) वंश ब्राह्मण, अथर्ववेद में भी केवल एक ही ब्राह्मण ग्रन्थ (1) गोपथ ब्राह्मण प्राप्त होता है।

7.7.3 आरण्यक ग्रन्थ

इसी प्रकार प्रत्येक वेद से सम्बन्धित आरण्यक भी प्राप्त होते थे जिसमें विविध प्रकार के उपासनाओं का गूढ़ रहस्य प्राप्त होता था, सम्प्रति ऋग्वेद के दो आरण्यक (1) ऐतरेयारणयक तथा (2) शांखायन आरण्यक प्राप्त होते हैं, कृष्ण यजुर्वेद का केवल एक तैत्तिरीय आरण्यक प्राप्त होता है, शुक्ल यजुर्वेद की उपलब्ध दोनों शाखाओं के ब्राह्मण ग्रन्थ में वृहदारण्यक नाम का आरण्यक प्राप्त होता है सामवेद तथा अथर्ववेद में कोई आरण्यक प्राप्त नहीं होता है, कुछ आचार्य तवल्कार आरण्यक को सामवेद से सम्बद्ध मानते हैं, परन्तु कुछ आचार्य इसे सामवेदीय जैमिनि शाखा से सम्बद्ध ब्राह्मण मानते हैं, तथा उसका अभिधान "जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण" के रूप में करते हैं।

7.7.4 उपनिषद् ग्रन्थ

वैदिक् वाङ्मय का चतुर्थ भाग उपनिषद् कहा जाता है, उपनिषद् का मुख्य अर्थ है ब्रह्म विद्या, उसी ब्रह्मविद्या के उपदेशक ग्रन्थ भी उपनिषद् नाम से जाने जाते हैं, वेद का अन्तिम भाग होने के कारण, तथा उसी में वेद का परम प्रतिपाद्य (ब्रह्म) का विस्तृत विवेचन प्राप्त होने के कारण उपनिषद् ग्रन्थों को वेदान्त के नाम से भी अभिहित किया जाता है। भारतीय दार्शनिक तत्वचिन्तन का मूल स्रोत इन्हीं उपनिषदों में हमें प्राप्त होता है। इसके अध्ययन से भारतीय संस्कृति के धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का पूर्ण परिचय प्राप्त किया जा सकता है। सम्प्रति उपनिषदों की उपलब्धता एवं उनकी निश्चित संख्या के विषय में पर्याप्त मत भेद है, फिर भी मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 मानी गयी है. जिसमें प्रतिवेद से सम्बन्धित उपनिषद् निम्नलिखित संख्या में पाये जाते हैं।

ऋग्वेदीय उपनिषद् 10
शुक्ल यजुर्वेदीय उपनिषद् 19
कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद् 12
सामवेदीय उपनिषद् 16
अथर्ववेदीय उपनिषद् 31

7.7.5 वेदाङ्ग

वेद के शाब्दिक एवं आर्थिक कलेवर की रक्षा में अत्यन्त उपयोगी एवं सहायक ग्रन्थों को वेदाङ्ग के नाम से जाना जाता है। इनकी संख्या मुख्यतः छः हैं, जिनके नाम है, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, एवं ज्योतिष प्रत्येक वेद शाखाओं की अपनी विशिष्ट उच्चारण परम्परा होने के कारण इनके शिक्षा ग्रन्थों में भी भिन्नता पायी जाती है इसी प्रकार यज्ञानुष्टानों एव संस्कार विधायक विधियों की विविधता के कारण उनके कल्प ग्रन्थों में भी अनेकता प्राप्त होती है। परन्तु शेष चार अङ्ग व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष सामान्यतः सभी वेदों के लिये समान रूप से परमावश्यक होने के कारण इनमें वेदानुसार विभिन्नता नहीं पायी जाती है, केवल शिक्षा तथा कल्प के ग्रन्थ प्रतिवेद के अनुसार भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं। कल्पवेदाङ्ग के चार भाग बतलाये जाते हैं. (1) श्रौतकल्प, (2) गृह्यकल्प, (3) शुल्बकला तथा (4) धर्मकल्प, इनके भी ग्रन्थ प्रतिवेद के अनुसार भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं, जिनकी चर्चा नियत इकाईयों में की जाएगी।

7.7.6 बोध प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 निरूक्त में कुल कितने काण्ड प्राप्त होते हैं?

उत्तर- निरूक्त में कुल तीन काण्ड किये गये हैं। जिनके नाम हैं, नैघण्टुक काण्ड, नैगम काण्ड तथा दैवत काण्ड।

प्रश्न-2 निरुक्त में अध्याय एवं पादों का विभाजन किस प्रकार किया गया है?

उत्तर- निरुक्त के तीनों काण्डों को बारह अध्यायों में विभाजित किया गया है, तथा उनमें पादों की संख्या निम्नलिखित रूप में पायी जाती है।

प्रथम अध्याय - में	छ : पाद	सप्तम अध्याय में	सात पाद
द्वितीय अध्याय में	सात पाद	अष्टम अध्याय में	तीन पाद
तृतीय अध्याय में	चार पाद	नवम अध्याय में	चार पाद
चतुर्थ अध्याय में	चार पाद	दशम अध्याय में	चार पाद
पञ्चम अध्याय में	चार पाद	एकादश अध्याय में	चार पाद
षष्ठ अध्याय में	छः पाद	द्वादश अध्याय में	चार पाद

प्रश्न-3 केनोपनिषद् किस वेद से सम्बन्धित है?

उत्तर- केनोपनिषद् सामवेदीय तवल्कार शाखा से सम्बन्धित है।

प्रश्न-4 केनोपनिषद् में कुल कितने खण्ड हैं ?

उत्तर- केनोपनिषद् में कुल चार खण्ड हैं।

प्रश्न-5 आर्षेय ब्राह्मण किस वेद से सम्बन्धित है?

उत्तर- आर्षेय ब्राह्मण सामवेद से सम्बन्धित है।

प्रश्न-6 शतपथ ब्राह्मण किस वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ है?

उत्तर- शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ माना जाता है।

प्रश्न-7 अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थ का क्या नाम है?

उत्तर- अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थ का नाम "गोपथ- ब्राह्मण" है।

प्रश्न-8 ऐतरेय ब्राह्मण किस वेद से सम्बद्ध है?

उत्तर- ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद से सम्बद्ध है।

प्रश्न-9 सामवेद में कुल कितने ब्राह्मण ग्रन्थ पाये जाते हैं?

उत्तर- सामवेद में कुल आठ ब्राह्मण ग्रन्थ पाये जाते हैं।

प्रश्न-10 बृहदारण्यक किस पेड़ का आरण्यक ग्रन्थ माना जाता है?

उत्तर- बृहदारण्यक शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक ग्रन्थ माना जाता है।

प्रश्न-11 'तैत्तिरीयोपनिषद्' किस वेद का उपनिषद् ग्रन्थ है?

उत्तर- तैत्तिरीयोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद का उपनिषद् ग्रन्थ है।

प्रश्न-12 वेदाङ्गों की कुल कितनी संख्या है?

उत्तर- वेदाङ्गों की कुल संख्या छः बतलायी गयी है।

प्रश्न-13 शुल्बसूत्र किस वेदाङ्ग के अन्तर्गत आता है?

उत्तर- शुल्बसूत्र कल्प नामक वेदाङ्ग के अन्तर्गत माना जाता है।

इकाई -8 निरूक्त प्रथम अध्याय 1-5 पाद तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. इकाई की परिधि
4. नियत पाद व्याख्या
5. बोध प्रश्नोत्तर

8.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप एम० ए० प्रथम वर्ष (संस्कृत) के खण्ड दो में निर्धारित पाठ्यक्रमों से परिचित हो जाने के बाद क्रमशः अपने पाठ्य ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ कर सकते हैं।

8.2 प्रस्तावना

नियत पाठ्यक्रमों में सबसे पहले निरुक्त शास्त्र का परिचय कराया जा चुका है, प्रस्तुत इकाई में निरुक्त शास्त्र के नियत भाग की व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी।

8.3 इकाई की परिधि

इस इकाई में निरुक्त शास्त्र के प्रथम अध्याय के एक से पांच पादों तक की व्याख्या की जाएगी, जिसमें सबसे पहले मूल संस्कृत के वाक्यों को दर्शाया जाएगा। तदन्तर उनके तात्पर्य अर्थ को व्याख्या के रूप में हिन्दी भाषा के माध्यम से उपस्थित किया जाएगा। अतिरिक्त प्रासंगित तथ्यों का विशेष सन्दर्भ में दिखलाया जाएगा।

8.4 नियत पाद व्याख्या

प्रथमोऽध्यायः

8.4.1 अथ प्रथमः पादः

मूल - समाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्य :।

हिन्दी- समाम्नायः - गो शब्द से लेकर देव पत्नी शब्द तक निघण्टु में पठित वैदिक शब्दों का समूह **समाम्नातः** - पुरातन ऋषियों महर्षियों के द्वारा पहले से ही एकात्रित किया गया है। **स व्याख्यातव्यः** उस एकत्रित किये गये वैदिक शब्द समूह की व्याख्या की जानी चाहिए।

विशेष- निघण्टु ग्रन्थ वैदिक शब्दों का संग्रहात्मक शब्दकोष है, आचार्य यास्क ने निघण्टु ग्रन्थ पर अपनी व्याख्या की है, निघण्टु पर की गयी व्याख्या का नाम निरुक्त है, निरूक्तकार यास्क अपने ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण के रूप में पूर्व ऋषियों द्वारा संग्रहीत वैदिक शब्द कोष निघण्टु पर व्याख्या करने की प्रतिज्ञा उपर्युक्त वाक्य द्वारा करते हैं।

मूल - **तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।**

हिन्दी- गो शब्द से लेकर देवपत्नी शब्द पर्यन्त वैदिक शब्द संग्रह को समाम्नाय शब्द से कहा गया है, और उसी समाम्नाय को आचार्यगण निघण्टु नाम से अभिहित करते हैं।

मूल - **निघण्टवः कस्मात्? निगमा इमे भवन्ति।**

हिन्दी- प्राक्तन ऋषियों के द्वारा संग्रहीत वैदिक शब्द संग्रह को निघण्टु शब्द से अभिहित क्यों किया जाता है? क्योंकि **इमे** - ये वैदिक शब्द **निगमा भवन्ति** - निगम अर्थात् वेद ही होते हैं, वेद के मन्त्रों का निश्चयात्मक बोध कराने के कारण निगम कहे जाते हैं, वे निगम ही संग्रहीत हो जाने पर निघण्टु नाम से कहे जाते हैं।

मूल- **छन्दोभ्य : समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाताः।**

हिन्दी- क्योंकि ये गवादि देवपत्न्यत्त वैदिक शब्द **छन्दोभ्यः**- वेदों के मन्त्रों से **समाहृत्य समाहृत्य** - निकाल, निकाल कर **समाम्नाताः** एकत्रित किये गये हैं। वहीं एकत्रित वैदिक शब्द संग्रह ही निघण्टु ग्रन्थ है।

मूल- **तेनिगन्तव एव सन्तो निगमनाघिघण्ट व उच्यन्त इत्यौपमन्य वः।**

हिन्दी- विभिन्न वैदिक मन्त्रों से एकत्रित किये गये वे गो आदि शब्द निश्चय पूर्वक मन्त्रार्थ का बोध कराने के कारण निगन्तु कहे जाते हैं, तथा निगन्तु शब्द ही वर्णागम वर्णविपर्यय आदि लक्षणों द्वारा अतिपरोक्ष वृत्ति में निघण्टु कहा जाता है ऐसा महर्षि उपमन्यु के शिष्य आचार्य औपमन्यव का अभिमत है।

विशेष- निरूक्तशास्त्र के विवृत्तिकार आचार्य दुर्ग के अनुसार वैदिक शब्दों में तीन प्रकार की वृत्तियां पायी जाती हैं, जिन्हें प्रत्यक्षवृत्ति, परोक्षवृत्ति अतिपरोक्षवृत्ति के नाम से कहा जाता है। प्रत्यक्ष वृत्तिवाले शब्दों पें प्रकृति-प्रत्यय स्पष्ट दिखाई पड़ता है, परोक्षवृत्तिवाले शब्दों में प्रकृति प्रत्यय स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता है परन्तु अनुमेय होता है, जिससे शब्दार्थ सार्थक हो जाता है, परन्तु अतिपरोक्षवृत्ति वाले शब्दों में प्रकृति प्रत्यय, अन्तर्लीन होता है, जिससे क्रियार्थ अथवा शब्दार्थ अविज्ञात रहता है, वैदिक शब्द प्रायः अतिपरोक्षवृत्ति में पाये जाते हैं, उन्हें अतिपरोक्ष वृत्ति से परोक्षवृत्ति में तथा परोक्षवृत्ति से प्रत्यक्षवृत्ति में लाकर शब्दार्थ का बोध कराया जाता है। यहाँ निघण्टु शब्द भी अति परोक्षवृत्ति में पाया जाता है, वहीं परोक्ष वृत्ति में निगन्तु तथा प्रत्यक्षवृत्ति में निगमयिता शब्द से व्ययहृत होता है, इसी प्रत्यक्ष वृत्ति से निघण्टु पद का अर्थ किया जाता है = मन्त्रों का निश्चयपूर्वक अर्थ बोध कराने वाला वैदिक शब्द। पुनः परोक्षवृत्ति का निगन्तु शब्द ही अतिपरोक्षवृत्ति में निघण्टु कहा जाता है।

मूल- **अपि वाऽहननादेवस्युः समाहताः भवन्ति।**

हिन्दी- अथवा दूसरे प्रकार से भी निघण्टु शब्द का निर्वचन किया जा सकता है, वह आहनन क्रिया अर्थात् पठनक्रिया के योग से ही निघण्टु के पञ्चाध्यायों में एकमिति किये गये शब्द समाहत कहे जाते हैं, अर्थात् समाहता भवति को पठिता भवति भी कहा जा सकता है।

विशेष- 'समाहन्तु' पद में दो उपसर्ग सम् तथा आ है क्रियावाची धातु हन् धातु गति अर्थात् अथवा पाठ के अर्थ में प्रयुक्त है, दोनों उपसर्ग सम् एवं आ के स्थान पर 'नि' उपसर्ग लाया गया है तथा ह के स्थान पर घ तथा 'त' के स्थान पर 'ट' वर्ण लाकर निघण्टु शब्द निष्पन्न किया जा सकता है। हन् धातु पाठ के अर्थ में बहुत्र देखा जाता है,जैसे सूत्रे इदमाहतम ब्राह्मणे प्याहतम् इत्यादि वाक्यों का अर्थ सूत्र में ऐसा पढ़ा गया है, ब्राह्मणग्रन्थ में भी ऐसा पढ़ा गया

है, किया जाता है। अतः 'निघण्टु' यह नामकरण केवल निगमन के कारण ही नहीं, अपितु पञ्चाध्यायी में पठन के कारण भी माना जा सकता है।

मूल- यद्वा समाहृता भवन्ति।

हिन्दी- अथवा सम् आङ् पूर्वक 'हृ' हरणे धातु से भी 'निघण्टु' शब्द का निष्पादन किया जा सकता है, क्योंकि गो ग्याक्ष्मा आदि शब्द वेदों से समाहृत किये गये होते हैं इसी समाहरण क्रिया के योग से 'समाहर्तु' शब्द कालक्रम से समाहन्तु तथा उपसर्ग और वर्ण का व्यपत्य हो जाने पर निघण्टु कहा जाने लगा।

विशेष- 'निघण्टु' शब्द वैदिक शब्दकोष के लिये प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु वैदिक शब्द कोष का भी संकलन कभी ऋषियों द्वारा किया गया था, इसी का संकेत निघण्टु शब्द के निर्वचन में तीन हेतु बतलाकर किया गया है, निगमन समाहनन, तथा समाहरण के कारण क्रमशः निगन्तु, समाहन्तु और समाहर्तु का नाम निघण्टु पड़ गया, यहाँ गम् धातु से एक तथा हन् एवं हृ धातु से दो-दो उपसर्ग लगाकर निघण्टु के मूल प्रकृति को निष्पन्न किया गया है।

मूल- तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च तानीमानि भवन्ति।

हिन्दी- लोक और वेद में प्रसिद्ध नाम-आख्यात, उपसर्ग और निपात इन्हीं चार पदों का संग्रह निघण्टु ग्रन्थ में भी किया गया है।

विशेष- यास्काचार्य ने पदों को गिनाने के लिए चत्वारिपदानि नहीं कहा, अपितु चत्वारि पदजातानि कहा है वहाँ पद जातानि का तात्पर्य है कि नाम आदि पदों में अनेक प्रविभाग होने के कारण उनकी अपनी अलग जाति हो जाती है, जैसे सुबन्त पदों में पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग की विभिन्नता होने पर भी वे नाम पद ही कहे जाते हैं। इसी प्रकार आख्यात पद में भी कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाव वाच्य की विभिन्नता देखी जाती है, तथापि वे आख्यात पद ही कहे जाते हैं, इसी प्रकार प्र, परा, अप, सम् आदि उपसर्गों में तथा च, इव, नू, किल आदि निपातों में शब्दतः एवं अर्थतः विभिन्नता पायी जाती है, तथापि वे सभी उपसर्ग एवं निपाद पद से कहे जाते हैं, इसीलिए पदानि न कहकर पदजातानि कहकर उन सभी प्राविभागों एवं विभिन्न जाति को भी ग्रहण किया गया है।

पुनः ग्रन्थकार ने 'चत्वारि पद जातानि' को बतलाने के लिए दो-दो पदों के अलग-अलग समुदायों का उल्लेख किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि नाम और आख्यात् पद उपसर्ग तथा निपात की अपेक्षा किये बिना अर्थाभिधान में समर्थ होते हैं, अतः उनकी प्रधानता होने के कारण उन्हें प्रथमतया उपात्र किया गया, उपसर्ग और निपात नामाख्यात की अपेक्षा रखते हैं, अतः सापेक्ष होने के कारण नामाख्यात पदों के गिनाने के बाद उन्हें उपात्त किया गया है। पुनः 'नामाख्याते' पद में द्वन्द्व समास द्वारा द्विवचनान्त अभिधान किये जाने का तात्पर्य यह है कि नाम और आख्यात इतरेतराकांक्षी हैं, उनमें भी अल्पाच् होने के कारण प्रथम अभिहित है, तथा कर्तृ वाक्यार्थ का आश्रय लेने के कारण आख्यात का अभिधान बाद में किया गया है।

इसी प्रकार द्वितीय समुदाय "उपसर्ग निपाताश्च" पद में भी द्वन्द्व समास द्वारा बहुवचनान्त अभिधान किया गया है जिसका तात्पर्य वह है कि उपसर्ग और निपात् नाम और आख्यात पदों के विशेष अर्थों का द्योतन समान रूप से करते हैं, अतः दोनों में अर्थविशेष द्योतकत्व रूप समान कार्य कारित्व धर्म होने के कारण अलग समुदाय किया गया। उपसर्ग यतः आख्यात् के सहयोगी होते हैं अतः आख्यात के अनन्तर उनका अभिधान किया गया,

तथा सर्वान्त में चतुर्थ पद निपात का अभिधान किया गया।

मूल- **एतत्रैतन्नामाख्यातयोर्लक्षणं प्रदिशन्ति ।**

हिन्दी- निघण्टु ग्रन्थ में नाम और आख्यात का लक्षण आचार्यगण इस प्रकार बतलाते हैं।

मूल- **भाव प्रधानमाख्यातं सत्व प्रधानानि नामानि।**

हिन्दी- भाव = क्रिया है प्रधान जिसमें वह पद आख्यात कहा जाता है, तथा सत्व = द्रव्य है प्रधान जिसमें वह पद नाम कहा जाता है।

विशेष- ग्रन्थकार के कथन का आशय वह है कि जिस पद में क्रिया की प्रधानता हो तथा कारकादि गौण हों उसे आख्यात समझना चाहिए, किन्तु जिस पद में लिङ्ग संख्या वचनादि से युक्त द्रव्य की प्रधानता हो, तथा क्रिया गौण हो उसे नाम समझना चाहिए। आख्यात जैसे पचति पठति भुक्ते, शेते आदि, नाम जैसे, पुरुषः रमा, धनम् आदि।

मूल- **तद् यत्रोभे भावप्रधाने भवतः।**

हिन्दी- जहाँ पर दोनों (नाम और आख्यात) होते हैं वहाँ आख्यात = क्रिया की प्रधानता होती हैं, जैसे रामः पठति इस वाक्य में नाम-राम तथा आख्यात पठति है, यहाँ पठति क्रिया की प्रधानता है, नाम तो उस क्रिया के सम्पादनार्थ अङ्गभूत है।

मूल- **पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजति पचतीत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यन्तम्।**

हिन्दी- किसी क्रिया के आरम्भ से लेकर उसकी समाप्ति तक पौर्वापर्यरूप से अवस्थित यावन्मात्र क्रिया को व्रजति, पचति आदि आख्यात पद से कहा जाता है।

विशेष- उपक्रम का अर्थ है प्रारम्भ तथा अपवर्ग का अर्थ है समाप्ति। यहाँ ग्रन्थकार का आशय यह है कि कोई क्रिया जब प्रारम्भ की जाती है, वहाँ से लेकर जब तक वह समाप्त नहीं हो जाती है तब तक एक ही आख्यात पद से वह कही जाती है, यद्यपि उसके मध्य में अवान्तर छोटी-छोटी क्रियायें भी होती रहती हैं परन्तु वे गौण होने के कारण प्रधान आख्यात् पद की वाच्य नहीं होती हैं। जैसे राम विद्यालय जाता है इस वाक्य में आख्यात् पद 'गच्छति' है। अर्थात् राम निष्ठ गमन क्रिया,वह घर से प्रारम्भ होकर विद्यालय तक समाप्त होती है, इसके मध्य राम द्वारा अनेकानेक अन्य क्रियायें भी की जाती हैं जैसे-किसी को प्रणाम करना, किसी से कुछ पूँछना, रास्ते में गाना, हंसना, पुकारना, विवाद करना, दौड़ना आदि, परन्तु ये सब गौण क्रियायें मानी जाती गमन क्रिया ही प्रधान मानी जाती है।

मूल- **मूर्त सत्त्वभूतं सत्त्वनामनिर्वज्या पक्तिरिति।**

हिन्दी- कभी कभी आख्यात भी सिद्धावस्था में मूर्त रूप में परिणत होकर सत्व के रूप में दिखाई पड़ता है, अर्थात् द्रव्य के लिंग संख्या वचनादि गुणों से युक्त होकर व्यवहृत होने लगता है, जैसे व्रज्या और पक्तिः।

विशेष- व्रजन अर्थात् गमन जहाँ सिद्ध हो गया है उसे व्रज्या पद से कहा जाता है, इसी प्रकार पाक अर्थात् पकाना जहाँ पूर्ण हो गया है, उसे पक्ति पद से कहा जाता है, व्रज्या का तात्पर्य अर्थ है यात्रा तथा पक्ति का निहितार्थ है रसोई। व्रज्या और पक्ति पदों के मूल में भाव ही निहित है, परन्तु "कृदनिहितो भावों द्रव्यवत् प्रकाशते" कृदन्त प्रत्यय से अभिहित भाव द्रव्य की तरह प्रकाशित होता है, इस नियम से व्रज्या और पक्ति पाद नाम पद के रूप में माने जाते हैं।

मूल- 'अद' इति सत्त्वानामुपदेशः गौरश्वः पुरूषो हस्तीति।

हिन्दी- सामान्यतः सभी नाम पदों का कथन अदः = यह इस सामान्य वचन से हो जाता है, परन्तु पदार्थ विशेष का उपदेश तो विशेष शब्द से ही हो पाता है, जैसे किसी सत्त्व भूत द्रव्य के लिये सामान्यत यह प्रश्न किया जा सकता है कि "किमदः" = यह क्या है? इसके उत्तर के समय सत्त्वभूत द्रव्य में लिङ्गादि का विचार अवश्य किया जाता है तब कहना पड़ता है, अयं गौः, अयं अश्वः, अयं पुरुष = अयं हस्ती, परन्तु, नाम के स्त्री होने पर इयं गौ, इयं अश्वा इयं नारी, इयं हस्तिनी, तथा नाम के नपुंसकलिंग होने पर इयं पुष्पं, इदं पुस्तकं आदि विशेष शब्द का प्रयोग करना पड़ता है।

मूल- भवतीति भावस्य, आस्ते, शेते, व्रजति, तिष्ठतीति।

हिन्दी- भवति = होता है, यह सामान्य भाव अर्थात् आख्यात् का उपदेश समझना चाहिये, कहीं कोई भी क्रिया होती है, उसकी जानकारी के लिए सर्वतः प्रथम यही प्रश्न किया जाता है किं भवति? क्या हो रहा है इसके उत्तर में आख्यात पद प्रयुक्त होता है, उसके प्रसंगानुसार - जैसे आस्ते = यह बैठा है, शेते = वह सो रहा है। व्रजति = वह जा रहा है, तिष्ठति = वह खड़ा है। इस प्रकार भवति = होता है यह क्रिया का सामान्य उपदेश है, तथा बैठा है सोया है आदि विशेष क्रिया का उपदेश समझना चाहिए।

मूल- इन्द्रियनित्यं वचन्औदुम्बरायणः। तत्र चतुष्टवं नोपपद्यते।

हिन्दी- आचार्य उदम्बर के तरुण पुत्र औदम्बरायण ऐसा मानते हैं कि जब तक नाम आदि पद वागिन्द्रिय द्वारा उच्चरित होते हैं, तावत्काल पर्यन्त ही ये नित्य रहते हैं, तदुपरान्त वे विनष्ट हो जाते हैं, अतः किसी वाक्य में 'नाम-आख्यात - उपसर्ग - निपात' इन चारों की अवस्थिति नहीं हो सकती है, तथा उच्चरित पद विनष्ट हो जाते हैं और अनुच्चरित पद अविनष्ट रहते हैं, अतः दोनों विनष्ट तथा अविनष्ट पदों का संयोग सम्भव न होने के कारण नामादि पद चतुष्टय की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मूल- अयुगपदुत्पन्नानां वा शब्दानामितरेतरोपदेश :।

हिन्दी- पूर्व वाक्य से 'नोपपद्यते' इतना वाक्यांश आगामी वाक्यों में अनुवर्तित समझना चाहिए। अतः क्रमशः उत्पन्न होने वाले नामादि पदों में जो एक दूसरे के प्रति परस्पर गुण - प्रधान भाव की कल्पना की जाती है, वह भी उपपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि शब्द के आभ विद्वाश शाली होने कारण परस्पर गुण - प्रधानभाव असम्भव है।

मूल- शास्त्रकृतो योगश्च।

हिन्दी- व्याकरणादि शास्त्रों द्वारा विहित एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध भी उपपन्न नही हो सकता है क्योंकि शब्द के अनित्य होने से दो शब्दों का सहअस्तित्व सम्भव नहीं है।

विशेष- शब्द को अनित्य मानने वाले आचार्यों के पक्ष से औदुम्बरायण का यह कथन किया गया है कि शब्द मुख से उच्चारित होते ही विनष्ट हो जाते हैं अतः आगामी उच्चारणीय शब्दों के साथ उनका सम्बन्ध नहीं किया जा सकता, गुण और प्रधानभाव की कल्पना, तथा व्याकरण शास्त्र के द्वारा प्रकृति और प्रत्यय का सम्बन्ध भी नहीं किया जा सकता है। नाम और आख्यात के सहायस्थान में आख्यात की प्रधानता तथा नाम पदों की गौणता स्वीकार की गयी है, प्रकृति कहीं पर धातु तथा कहीं पर प्रातिपदिक माना जाता है, उससे पर में प्रत्यय का सम्बन्ध शाब्दिकों को स्वीकार्य है, उपर्युक्त समस्याओं का समाधान शब्द नित्यत्ववादियों के पक्ष से ग्रन्थकार द्वारा दिया जा रहा है।

मूल- **व्याप्तिमत्वान्तु शब्दस्य ।**

हिन्दी- शब्द के व्याप्तिमान् अर्थात् नित्य होने से पूर्वपक्ष में उपस्थापित समस्त समस्याओं का समाधान हो जाता है। सूत्र में प्रयुक्त 'तु' शब्द पूर्वपक्ष का निरसन करता है, शब्द का व्याप्तिमत्त्व ही उसका नित्यत्व है।

विशेष- 'शब्द गुणकमाकांश' इस न्याय से आकाश गुणवाला माना जाता है, अर्थात् जैसे आकाश नित्य तथा सर्वव्याप्त है वैसे ही शब्द भी नित्य एवं व्यापक है, शब्द के व्याप्तिमान् होने से ही 'नामाख्यातोपसर्ग निपात' शब्दों में इतरेतरोपदेशरूप प्रधानोपसर्जनभाव तथा शास्त्र द्वारा किया गया प्रकृति प्रत्यय का सम्बन्ध भी सम्पन्न हो जाता है, और शब्दानित्यत्ववादी पूर्वपक्षी के द्वारा किया गया आक्षेप निराधार सिद्ध हो जाता है।

शब्द के व्याप्तिमान होने में एक गूढ़ अभिप्राय यह है कि शब्द और अर्थ दोनों नित्य माने जाते हैं क्योंकि इन दोनों के बीच वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध नित्य माना जाता है, अतः शब्द, अपने अर्थ के साथ आकाश में नित्य विद्यमान रहता है, वही शब्द हमारे हृदयान्तर्गताकाश में भी नित्य विद्यमान रहता है, अन्तःकरण में प्रतिष्ठित वृद्धि विवक्षानुसार प्रथमतः अर्थ को ग्रहण करती है, तथा वह अर्थ जिस शब्द में नित्य समवेत रहता है, शब्द को उच्चारित करने के लिये मन को प्रेरित करती है, मन उस अर्थ समेत शब्द को उच्चारित करने के लिये वायु को प्रेरित करता है, वह वायु अर्थयुक्त शब्द को उच्चारित करने के लिये वक्ता के मुख के कण्ठ तालवादि स्थानों से संघषित होता हुआ वर्ण के रूप में उच्चरित होता है, उसीक्षण श्रोता अपने श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से इन्हीं शब्दों में ग्रहण करता हुआ अपने हृदयाकाश में ले जाता है, वहाँ अन्तः करण में प्रतिष्ठित बुद्धि, शब्द समवेत अर्थ को ग्रहण कर मन द्वारा श्रोता के चैतन्य को अर्थ का बोध करा देती है, यह कार्य इतना शीघ्र हो जाता है कि इसमें काल की मात्रा का आकलन नहीं हो पाता, आशय यह है कि शब्द नित्य होने के कारण अभिधान-अभिधेय उभयस्वरूप वाला होता हुआ पुरुषभेद से शब्दात्मना-उच्चरित तथा अर्थात्मना गृहीत होता हैं, यही शब्द का व्याप्तिमत्त्व माना जाता है।

मूल- **अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके।**

हिन्दी- व्याप्तिमान शब्द अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, उनकी सूक्ष्मता तथा व्याप्तिमत्ता के कारण ही उनके द्वारा लोक में नामकरण तथा व्यवहारादि किय जाता है।

विशेष- यद्यपि लोक का व्यवहार हाथ हिलाने तथा नेत्र के निमीलनोन्मीलनादि के द्वारा भी किया जा सकता है फिरभी गुरुमुख से उच्चरित शब्द को पुनः उसी रूप में शिष्य द्वारा उच्चारित किये जाने का व्यवहार उक्त हस्त कम्पनादि अभिनयों से नहीं हो सकता, यतः हस्त-नेत्रादि के संकेतों की अपेक्षा शब्द अत्यन्त सूक्ष्म तथा व्याप्तिमान होते हैं अतः उन्हीं के द्वारा लोक व्यवहार किया जा सकता है।

मूल- **तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम्।**

हिन्दी- उन नाम-आख्यातोपसर्ग निपात पदों की शक्ति मनुष्यों की तरह देवताओं का भी अभिधान करने में समर्थ है।

विशेष- नामाख्यातादि पद जैसे मनुष्यों को अर्थबोध कराते हैं वैसे ही देवताओं के लिये भी बोधकराने में समर्थ होते हैं, अतः यज्ञानुष्ठानादि व्यवहारों में शब्द द्वारा ही हविप्रदान तथा शब्द द्वारा आशीर्वादकामना की जाती है।

मूल- पुरुष विद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे।

हिन्दी- पौरुषेय ज्ञान के अनित्य तथा अनिश्चित होने के कारण कर्मफल प्रतिपादक ऋग्वेदादि मन्त्र नित्य शब्दराशि के रूप में वेद में समाम्नात हैं।

विशेष- मनुष्य की तरह देवता में भी शब्दव्यवहार की समानता स्वीकार किये जाने पर भी वेदमन्त्रों के शब्दों की नित्यता स्थिर एवं निश्चित है, क्योंकि अनभ्यास और तपोदौर्वल्य के कारण पुरुष अपने वाक्य रचना को भी भूल जाता है, परन्तु वेद के मन्त्रों में कर्मस्मारकत्व एवं देवतास्मारकत्व गुण होने के कारण वे यज्ञानुष्ठानादि क्रमों को भूलने नहीं देते हैं यही उन मन्त्रगत शब्दों की नित्यता एवं निश्चयता मानी जाती है।

'भाव विकार निरुपणम्'

मूल- षड्भाव विकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायते आस्ति, विपरिणमते, बर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति॥

हिन्दी- 'भवतीतिभावस्य' के अंतर्गत बतलाया जा चुका है कि जो कुछ होता है उसे भाव कहते हैं, उसी भाव के छः प्रकार के विकार होते हैं, ऐसा आचार्य वार्ष्यायणि मानते हैं, पहला जायते - अर्थात् उत्पन्न होना, दूसरा अस्ति अर्थात् आस्तित्व में आना (नाम रूप ग्रहण करना) तीसरा-विपरिणमते अर्थात् परिणमित होना (अपने मूल स्वरूप से परिवर्तित होना) चौथा वर्द्धते अर्थात् बढ़ना, पांचवां अपक्षीयते अर्थात् अपक्षीण होना, छठा-विनश्यति अर्थात् विनष्ट हो जाना।

मूल- जायति इति पूर्वभावस्यादिमाचष्टे नापरभावमा चष्टे, न प्रतिषेधति।

हिन्दी- जायते नामक प्रथम भावविकार, पूर्व के अनेक भावों में आदिभूत प्रधानभाव को ही मात्र कहता है, दूसरे आस्ति नामक भावविकार को न तो कहता है, न उसका प्रतिषेध ही करता है क्योंकि उत्पत्ति की दशा में उत्पद्यमान वस्तु की स्थिति परिपूर्ण न होने से अस्तित्व न तो बतलाया जा सकता है न तो उसका निषेध ही किया जा सकता है।

मूल- अस्तीत्युत्पन्नस्य सत्त्वस्यावधारणम्।

हिन्दी- आस्ति नामक द्वितीय भाव विकार उत्पन्न वस्तु के आस्तित्व मात्र को बतलाता है, वह न तो अपरभाव विपरिणाम को कहता है और न तो उसका प्रतिषेध ही करता है।

मूल- विपरिणमत इत्यप्रच्यवमानस्य तत्त्वाद्विकारम्।

हिन्दी- 'विपरिणमते' यह तृतीय भाव विकार अपने मूल स्वरूप से विगलित न होने हुए भी किञ्चित् विकार अर्थात् परिवर्तन को बतलाता है, अगले भाव विकार 'वर्द्धते' के अर्थ को न तो बतलाता न निषेध ही करता है।

मूल- वर्द्धते इति स्वाङ्गाभ्युच्चयं सांयौगिकानां वार्थानाम्, वर्द्धते विजयेनेति वर्द्धते शरीरेणेति वा।

हिन्दी- वर्द्धते (बढ़ता है) यह चौथा भाव विकार, अपने शारीरिक अङ्ग- शिर-कण्ठ, बाहू, उदर, आदि के विकास को बतलाता है, तथा दैनिक उपयोगी वस्तुओं एवं हिरण्यादि धनों के सम्वर्धन को कहता है। इसके लिये उदाहरण दिया गया है कि वह विजय से आगे बढ़ता है, अथवा शरीर के अवयवों के पुष्ट होने से बढ़ता है। इस प्रकार यह भाव विकार भी आगामी अपक्षीयते वाले भाव विचार को न तो कहता है न उसका निषेध ही करता है।

मूल- 'अपक्षीतत्रे' इत्यनेनैव व्याख्यातः प्रतिलोभम्।

हिन्दी- अपक्षीयते नामक पांचवा भाव विकार, अपने पूर्वभाव विकार-वर्द्धते के विपरीत वस्तु के ह्रास को बतलाता है, जिस प्रकार शारीरिक अङ्गों के द्वारा शरीर का विकास, अथवा सांयोगिक द्रव्यों से सम्वर्धन से किसी का विजय दिखाई पड़ता है उसी प्रकार अपक्षीयते भाव विकार से उसका क्रमिक क्षरण ह्रास भी होता है यह भाव विकार भी आगामी भाव विकार को न तो करता है न उसका निषेध ही करता है।

मूल- विनश्यतीत्यपरभावमाचष्टे न पूर्वभावमाचष्टे न प्रतिषेधति।

हिन्दी- विनश्यति (नष्ट होना) यह छठा भाव विकार अन्तिम अनेक भावों में आदिभाव को कहता है, अपने से पूर्व ह्रास रूप भाव-विकार को न तो कहता है न ही उसका निषेध करता है।

मूल- अतोऽन्ये भावविकारा एतेषामेव विकारा भवन्तीति ह स्माह।

हिन्दी- अन्य आचार्यों के मत में वार्ष्यायणि के इन छः भावविकारों के अतिरिक्त भी कतिपय भाव विकार माने जाते हैं, यास्क ने बतलाया कि इन छः के अतिरिक्त भाव विकारों को इन्हीं छः में ही यथायोग्य अन्तर्भूत समझ लेना चाहिए। जैसे - जायते के अन्तर्गत - निष्पद्यते, अभिव्यज्यते, आविर्भूयते प्रकाशते, अस्ति के अन्तर्गत - विद्यते, वर्तते, भवति आदि विपरिणामते के अन्तर्गत - जीर्य्यति, विकसते आदि वर्द्धते के अन्तर्गत -पुष्पयति, उपचीयते, सम्बर्द्धने आदि अपक्षीयते के अन्तर्गत - ध्वंस्यते, भ्रंस्यते, ग्लायते, ह्रस्यते आदि विनश्यति के अन्तर्गत - निलीयते, विलीयते, म्रियते आदि।

मूल- ते यथा वचनमभ्यूहितव्याः।

हिन्दी- जायते आदि षड्भावविकारों को ही सर्वत्र प्रकरणानुसार तर्क एवं युक्ति के बल से निश्चय कर लेना चाहिए।

उपसर्ग निरुपणम्

मूल- न निर्बद्धा उपसर्ग अर्थान्निराहुरिति शाकंटायनः।

हिन्दी- नाम अथवा आख्यात के समीप में रहकर उन्हीं के अर्थ को विशेष रूप से उत्पन्न करने वाले शब्द उपसर्ग कहे जाते हैं। ये उपसर्ग, नाम अथवा आख्यात के साथ आवद्ध न होने पर किसी भी अर्थ को नहीं कर सकते हैं ऐसा आचार्य शाकटायन का मानना है।

मूल- नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति।

हिन्दी- नाम अथवा आख्यात के साथ संयुक्त होकर ही उपसर्ग, उनके अर्थ विशेष को प्रकाशित करने में समर्थ होते हैं, स्वतन्त्रयता इनका कोई अर्थ नहीं होता है, अतः ये नामाख्यात के अर्थों के द्योतक माने जाते हैं। उपसर्गों के सम्बन्ध में आचार्य शाकटापन का यही द्योतकत्व पक्ष माना जाता है।

मूल- उच्चवचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः।

हिन्दी- आचार्य गर्ग के मतानुयायी निरुक्तकार आचार्य गार्ग्य के अनुसार उपसर्गों का अपना स्वतन्त्र अर्थ भी होता है वह केवल नाम और आख्यात पदों से साथ संयुक्त होकर उनके अर्थ का द्योतन ही नहीं करते हैं, अपितु अपने-स्वतन्त्र्य वाच्यार्थ के द्वारा उनमें अर्थवैशिष्टय उत्पन्न कर देते हैं, उपसर्गों के सम्बन्ध में आचार्य गार्ग्य का यही वाचकत्व पक्ष माना जाता है।

मूल- तद् य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तं नामाख्यातयोरर्थं विकरणम्।

हिन्दी- उपसर्गों का अपना जो स्वतन्त्रय अर्थ है वही अर्थ, नाम और आख्यात के साथ संयक्त होने

पर भी रहता है, परन्तु समवेत होने पर अर्थ में वैशिष्ट्य उत्पन्न कर देता है। अतः दोनों स्थितियों में (संयुक्त, असंयुक्त) उपसर्गों को अर्थ विशेष का वाचक माना जाता है, जिसे निरुक्तकार ने निम्नलिखित रूप में दर्शाया है।

मूल- **आ इत्यवागर्थे।**

हिन्दी- 'आ' उपसर्ग का अर्वाक् = (पहले) के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, आगमनम्, आगच्छति, आपर्वतात्, अहिमालयात् इत्यादि इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मूल- **प्र परेत्येतस्य प्रातिलोम्यम्।**

हिन्दी- 'प्र' तथा 'परा' ये दोनों उपसर्ग पूर्वोक्त 'आ' उपसर्ग के प्रतिलोम (विपरीत) अर्थ को प्रकट करते हैं, जैसे प्रगतः परागतः इत्यादि।

मूल- **अभीत्याभिमुख्यम्।**

हिन्दी- 'अभि' इस उपसर्ग का आभिमुख्य-सम्मुख अर्थ होता है, जैसे अभ्यागतः, अभिमतः आदि।

मूल- **प्रतीत्येतस्य प्रातिलान्यम्।**

हिन्दी- 'प्रति' नामक यह उपसर्ग 'अभि' उपसर्ग के प्रतिलोम-विपरीत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे- प्रतिकूलः, प्रतिलिपिः, प्रतिगत इत्यादि।

मूल- **अति सु इत्यधिपूजितार्थे।**

हिन्दी- 'अति' और 'सु' ये दोनों उपसर्ग सम्मान अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे अतिधनः सुब्राह्मण अतिमेधावी, अतिशेते, अतिक्रमति, स्वागतम् इति।

मूल- **निर्दुरित्येतयोः प्रतिलोम्यम्।**

हिन्दी- 'निर' और 'दुर' ये दोनों उपसर्ग सम्मानार्थ के प्रतिलोम-विपरीत अर्थ को प्रकट करते हैं, जैसे निर्धनः, दुर्ब्राह्मण, निर्याति, आदि।

मूल- **न्यवेति विनिग्रहार्थीयौ।**

हिन्दी- 'नि' और 'अव' ये दोनो उपसर्ग विनिग्रह-नियन्त्रण अर्थ को प्रकट करते हैं जैसे निगृह्णाति अवगृह्णाति आदि।

विशेष- दो अथवा दो से अधिक पदों का वाक्यात्मना उच्चारण करना विग्रह कहलाता है, पुनः अर्थ विशेष को बतलाने के लिए दोनों पदों का अलग-अलग उच्चारण करना अवग्रह कहलाता है, निग्रह और अवग्रह से शब्द तथा अर्थ पर नियन्त्रण किया जाता है, अतः विनिग्रह-नियन्त्रण के अर्थ को प्रकट करने वाले दोनों उपसर्ग बतलाये गये हैं।

मूल- **उदित्येतयोः प्रतिलोम्यम्।**

हिन्दी- 'उत' यह उपसर्ग पूर्व में कहे गये 'नि' और 'अव' उपसर्ग के विपरीत अर्थ को बतलाया है, जैसे- उद्गृह्णाति, उत्तिष्ठति, उत्थापयति, उत्क्षेपणम् उल्लेखः इत्यादि।

मूल- **समित्येकीभावम्।**

हिन्दी- अनेक पदार्थों को एक जगह या एक समान बनाना ही एकीभाव कहलाता है, 'सम्' यह उपसर्ग उसी एकीभाव के अर्थ को प्रकट करता है, जैसे संगृह्णाति, संस्कारोति, सम्मानः, सन्देशः इत्यादि।

मूल- **व्यपेत्येतस्य प्रतिलोम्यम्।**

हिन्दी- 'वि' और 'अप' ये दोनों उपसर्ग पूर्व में कहे गये 'सम्' उपसर्ग के विपरीत अर्थ को प्रगट करते हैं, जैसे-विगृह्णाति,अपगृह्णाति, विरोधः,अपवादः, विवाद; विवदति, अपवदति इत्यादि।

मूल- अन्विति सादृश्यापरभावम्।

हिन्दी- 'अनु' यह उपसर्ग सादृश्य के अपरभाव को अथवा सादृश्य तथा अपरभाव दोनों के अर्थ को यथा प्रसंग प्रकट करता है, जैसे अनुगच्छति, अनुकरोति, अनुरज्जति, अनुगमनं अनुवादः, अनुरागः, अनुकूलः, अनुरूपम् इत्यादि।

मूल- अपीति संसर्गम्।

हिन्दी- 'अपि' यह उपसर्ग दो पदों के परस्पर सम्बन्ध को बतलाता है, संसर्ग सम्बन्ध को कहते हैं, वह सम्बन्ध, जो सम्बन्धी से भिन्न हो, जैसे सर्पिषोऽपि स्यात्, मधुनोऽपि स्यात् इन वाक्यों में अपि उपसर्ग के बल से सम्बन्धी आज्य अथवा मधु के विन्दु का बोध होता है।

मूल- उपेत्युपजनम्।

हिन्दी- 'उप' यह उपसर्ग सामीप्य अथवा आधिक्य अर्थ को प्रकाशित करता है, जैसे उपगंगम्, उपजायते इत्यादि।

मूल- परीति सर्वतो भावम्।

हिन्दी- 'परि' यह उपसर्ग सर्वतोभाव अर्थ को प्रकट करता है, जैसे परिधावति, परिपालयति विष्णुर्जगत् इत्यादि।

मूल- अधीत्युपरिभाव मैश्वर्य वा।

हिन्दी- 'अधि' यह उपसर्ग उच्च भाव तथा ऐश्वर्यभाव को प्रकाशित करता है, जैसे अधितिष्ठति लोकं, अधिभुविरामः, इसी प्रकार अधिपतिः, अध्यक्षः इत्यादि।

मूल- एवमुच्चावचानर्थान्प्राहुस्त उपेक्षितव्याः।

हिन्दी- इस प्रकार उपर्युक्तरूप से उपसर्गों के विभिन्न अर्थों को आचार्यों ने बतलाया है, उन अर्थों को अच्छी तरह, जानना चाहिए, अर्थात् कौन उपसर्ग किस अर्थ में प्रयोक्तव्य होता है, इसकी अच्छी तरह परीक्षा करके ही उसका प्रयोग करना चाहिए।

इति प्रथमाध्याये प्रथमः पादः

8.4.2 अथ प्रथमाध्याये द्वितीयः पादः

मूल- अथ निपाताः उच्चावचेष्वर्थेषु नियतन्ति।

हिन्दी- उपसर्ग के विवेचन के अनन्तर निपात के विषय में बतलाया जाता है, अनेक प्रकार के अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण इन्हें निपात कहा जाता है।

मूल- अप्युपमार्थेऽपि कर्मोपसंग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः।

हिन्दी- सामान्यतः तीन अर्थों में निपातों का वर्गीकरण किया जाता है, पहला-उपमार्थक निपात, दूसरा-अर्थविशेष संग्रहात्मक निपात, तीसरा-पदपूरणार्थक निपात।

विशेष- उपमार्थक निपात प्रायः लोक-वेद में समान रूप से प्राप्त होता है,निरुक्तशास्त्र में कर्म शब्द अर्थ का समान वचन (पर्याय) माना जाता है, अतः कर्मोपसंग्रह का तात्पर्य है, अर्थोपसंग्रह। तीसरे प्रकार के निपात केवल पद एवं पाद पूर्ति में अक्षर गणना की- दृष्टि से सहायक होते

हैं, उसका स्वयं का कोई अर्थ नहीं होता है।

मूल- तेषामेते चत्वार उपमार्थे भवन्ति।

हिन्दी- निपातों में इव, न, चित्, नू ये चार प्रकार के निपात प्रायः उपमार्थक माने जाते हैं, अर्थात् मन्त्रों में इनका प्रयोग उपमा के लिये किया गया प्राप्त होता है।

मूल- इवेति भाषायां चान्वध्यायं च। अग्निरिवेन्द्र इवेति।

हिन्दी- उपमार्थक चार निपातों में 'इव' निपात लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत दोनों में उपमा के लिए ही प्रयुक्त होता है, लोक में जैसे-अग्निरिव तीक्ष्णः - आग्नि के समान तेज, इन्द्ररिव विक्रान्तः - इन्द्र के समान पराक्रमी आदि। वेद में- अग्निरिव मन्यो लिषितः सहस्व-अर्थात् हे मन्यो! अग्नि के समान तेजयुक्त होकर हमारे शत्रुओं को पराभूत करो।

मूल- नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्।

हिन्दी- निषेध का ही दूसरा अभिधान प्रतिषेध है, अतः लौकिक संस्कृत भाषा में 'न' यह निपात निषेधार्थक प्रयुक्त होता है। जैसे-घटोनास्ति, पटो नास्ति इत्यादि।

मूल- उभयमन्वध्यायम्।

हिन्दी- अन्वाध्याय वेद को कहते हैं, वेद में 'न' यह निपात दोनों अर्थों (प्रतिषेध तथा उपमा) में प्रयुक्त होता है। जिसका उदाहरण क्रमशः यहाँ दिया जाता है।

मूल- 'नेन्द्रं देवममंसत' इति प्रतिषेधार्थीयः पुरस्तादुपचारस्तस्य यत्प्रतिषेधति।

हिन्दी- 'नेन्द्रं देवममंसत' इति ऋचा में 'न' यह निपात प्रतिषेध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसका प्रतिषेध किया जाता है। उसके पहले 'न' के प्रयोग का नियम है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि निषेधार्थक 'न' निपात का प्रयोग मन्त्रों के पादादि में प्रयुक्त होता है।

मूल- 'दुर्मदासो न सुरायाम्' इत्युपमार्थीयः, उपरिष्टादुपचारस्तस्य येनोपनिमीते।

हिन्दी- दुर्मदासो न सुरायाम्- सुरापान करने के उपरान्त मदान्वित पुरुषो की तरह सभी सोमपायी भी अहमहनिका से अपने को विशिष्ट कहने लगे। प्रस्तुत मन्त्र में 'न' निपात् का प्रयोग उपमा के अर्थ में किया जाता है, जिस शब्द के साथ उपमा दी जाती है, उस शब्द के बाद में उपमार्थक 'न' का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् उपमार्थक 'न' का प्रयोग मन्त्र के मध्य में प्रयुक्त होता है।

मूल- चिदित्येषोऽनेककर्मा।

हिन्दी- निरुक्तशास्त्र में सर्वत्र कर्म शब्द से अर्थ समझना चाहिए, अनेककर्मा का तात्पर्य है, अनेकार्थक,। चित् यह निपात निपात यद्यपि अनेकार्थक, तथापि यहाँ उपमार्थक होने के कारण उपमा वाले निपात के साथ पढ़ा गया है। चित् के अनेकार्थता को आगामी पंक्तियों में दर्शाया जाता है।

मूल- आचार्यश्चिदिदं ब्रूयादिति पूजायाम्।

हिन्दी- आचार्य ही ऐसा कह सकते हैं, दूसरा नहीं इस अर्थ को कहने वाले "आचार्यश्चिदिदं ब्रूयात्" वाक्य में 'चित्' निपात सम्मान (पूजा) के अर्थ में प्रयुक्त है, जिसका तात्पर्य है कि आचार्य के अतिरिक्त दूसरा कोई इस दुरुह विषय का प्रतिपादन नहीं कर सकता है, अतः 'चित्' निपात द्वारा आचार्य की महत्ता एवं पूजनीयता प्रकट होती है।

उदाहरणीय वाक्य में आचार्य शब्द के आ जाने से ग्रन्थकार यास्क आचार्य पद का निर्वचन करते हैं।

मूल- **आचार्यःकस्मात्? आचार्य आचारं ग्राहयति, अचिनोत्यर्थान् अचिनो ति बुद्धि मिति वा।**

हिन्दी- आचार्य पद कैसे निष्पन्न होता है? इसका समाधान बतलाते हुए निरुक्तकार आचार्य पद का निर्वचन करते हैं, आचार्य वह कहा जाता है जो अपने शिष्यों को आचार-सदाचार ग्रहण कराता है, अर्थात् सिखाता है जो शब्दों के अनेक प्रकार के अर्थों का चयन करता है, जो शिष्यों के विभिन्न स्तरीय बुद्धि का चयन करता है तथा तदनुसार उन्हें वुद्धि प्रदान करता है।

विशेष- गुरू ज्ञान प्रदान करने वाले को कहते हैं ज्ञान प्राप्त करने की पात्रता भी गुरू के द्वारा शिष्य में प्रथमतः लाई जाती है, प्राचीन काल में गुरुकुल में प्रविष्ट ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन आदि संस्कार जिस गुरू के द्वारा प्रदान किया जाता था, उसे ही आचार्य कहा जाता था, स्मृतिकार मनु द्वारा बतलाये गये आचार्य लक्षण में उक्त सभी भावों का समावेश देखा जा सकता है।

उपनीय तु यः शिष्य वेदमध्यापयेद् गुरुः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।

मूल- **दधिचिदित्युपमार्थे।**

हिन्दी- "दधिचित्' इस वैदिक पद में 'चित्' निपात-उपमा के अर्थ में प्रयुक्त है, जिसका अर्थ दधि की तरह।

मूल- **कुल्माषाँश्चिदाहरेत्यवकुत्सिते। कुल्माषाः कुलेषु सीदन्ति।**

हिन्दी- अवकुत्सित का अर्थ है अतिनिन्दित। 'चित्' निपात का प्रयोग अतिनिन्दित अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जिसका उदाहरण है-"कुल्माषान् चित् आहार" इसका भाव यह है कि कोई अतिथि किसी निर्धन आतिधेय से कहता है कि यदि तुम्हारे घर में आतिथ्य के लिए शुद्ध पवित्र अन्न नहीं है तो अतिनिन्दित-उपेक्षित अन्न कणों को ही ले आवो। कुल्माष उन अन्नकणों को कहते हैं जो घर में उपेक्षित पड़े रहते हैं। सबल अन्नों के समूह से निष्प्राण अन्नों को पृथक कर दिया जाता है, जो घर के कोने में पड़े पड़े दुःखी होते हैं।

मूल- **'नु' इत्येषोऽनेक कर्मा।**

हिन्दी- 'नु' नाम का निपात अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, जिसका उदाहरण ग्रन्थकार मूल-पंक्तियों में देते हैं।

मूल- **इदं नु करिष्यतीति हेत्वपदेशे।।**

हिन्दी- अपदेश का अर्थ है कथन, हेतु के कथन में 'नु' निपात का प्रयोग किया जाता है, प्रस्तुत उदाहरण का तात्पर्य अर्थ है कि वह इस कारण से यह प्रसक्त कार्य करेगा।

मूल- **कथन्तु करिष्यतीत्यनुपृष्टे, नन्वेतदकार्षीदिति च।**

हिन्दी- 'नु' यह निपात किसी प्रश्न के वाद किये जाने वाले प्रतिप्रश्न के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। जैसे - ''कथन्नु करिष्यति' इस वाक्य के पहले का प्रश्न है क्या कोई इस कार्य को कर सकता है, (काश्चित् कार्यमिदं कुर्यात्) तदुपरान्त कैसे कोई कर सकता है? यह अनुप्रश्न है, इसी अनुप्रश्न में 'नु' का प्रयोग किया गया है। पुनः इसी प्रकार 'ननु' निपात का भी प्रयोग अनुप्रश्न अर्थ में किया जाता है, जैसे कोई प्रश्न करे किं वह इस कार्य को कैसे कर लेगा, इस पर दूसरा कोई उत्तर देवे कि क्योंकि नहीं कर लेगा। इसके पहले भी ऐसा कार्य वह किया'' यही अनुप्रश्न है।

मूल- **अथाप्युपमार्थे भवति।**

हिन्दी- और भी यह 'नु' निपात उपमा के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जिसका उदाहरण अग्रिम वाक्य में दिया जा रहा है।

मूल- **'वृक्षस्य नु ते पुरुहूतवयाः' 'वृक्षस्येव ते पुरुहूत शाखाः। वयाः शाखाः। वेतेर्वातायना भवन्ति। शाखा खशयाः, शक्नोति वी।।**

हिन्दी- 'वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया'' (ऋ0 4/6/17/3) मन्त्र में''नु' निपात उपमार्थक है, मन्त्र का अर्थ है कि हे-पुरुहूत-बहुतों के द्वारा वुलाये जाने वाले इन्द्र। तुम्हारी रक्षात्मक क्रियायें वृक्ष की शाखा के समान चारों तर फैल रही हैं, क्या-शाखा को कहते हैं, क्योंकि वह निरन्तर हिलती डुलती रहती है, तथा वह वायु के प्रभाव से चारों तरफ घूमती है, अतः इसे वातायना भी कहते हैं, शाखा शब्द खशया शब्द के विपर्यास से बनता है, आकाश में शयन करने के कारण शाखा-खशया कही जाती है, अथवा शक्ल शक्तौ धातु से क को ख होने पर शाखा शब्द निष्पन्न हो जाता है, क्योंकि आकाश में रहती हुयी ये शाखायें वृक्ष से मूल से अपनी जीवनी शक्ति प्राप्त करने का सामर्थ्य रखती है।

मूल- **अथापि समुच्चयार्थे भवाति।**

हिन्दी- यहाँ 'वा' निपात का अनुवर्तन किया गया है, वह 'वा' निपात समुच्चय के अर्थ में भी प्रयुक्त होना है, जिसका उदाहरण आगे मूल में दिया जा रहा है।

मूल- ''वायुर्वात्वा मनुर्वात्वा'' इति

हिन्दी- वायुवात्वा मनुर्वात्वा (य0वेद 9/7) मन्त्र में 'वा' चकार के अर्थ में प्रयुक्त है 'च' निपात प्रायः समुच्च अर्थ में प्रयुक्त होता है, अतः 'वा' निपात भी समुच्चमार्थक है, मन्त्र का आशय है कि अश्व! तुम्हें वायु अथवा मनु तथा सभी गन्धर्वगण इस रथ में युक्त करते हैं।

मूल- **अह इति च ह इति च विनिग्रहार्थीयौ पूर्वेण संप्रयुज्येति।**

हिन्दी- अहं तथा 'ह' ये दोनों निपात विनिग्रह अर्थात् वृथग्भाव के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, एकही देवदत्त के दो भिन्न - भिन्न कार्यों में व्यापृत होने पर भी नियमतः एक ही देवदत्त का दो बार गृहीत किया जाता है। विनिग्रह का अर्थ ही विनिग्रहार्थ कहा जाता है, और वही अपने आप में विनीग्रहार्थीय कहलाता है।

विशेष- विनिग्रह शब्द से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय तथा उसे ईय आदेश होने पर विनिग्रहार्थीय शब्द निष्पन्न होता है उक्त ये दोनों निपात अपने पूर्ववाक्यार्थ के साथ संगत होकर ही प्रयुक्त होते

हैं, जैसा कि आगे के उदाहरण में दर्शाया गया है।

मूल- अयमहेदं करोत्वयानिमदम्। इदं ह करिष्यति इदं च करिष्यतीति।

हिन्दी- प्रस्तुत वाक्य में ग्रन्थकार ने 'अह' एवं 'ह' दोनों निपातों का क्रमशः उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसका स्वरूप टीकाकारों ने निम्नरूप से प्रस्तुत किया है, राम गायों को पानी पिलाने, तथा श्याम अभ्यागतों को भोजन करावें, इसका आशय यह है कि जो कार्य राम करेगा, श्याम वही कार्य न करके उससे भिन्न कार्य करेगा, इस वाक्यार्थ भेद को उपर्युक्त मूल वाक्य में 'अह' एवं 'ह' निपात के द्वारा दिखलाया गया है। अतः दोनों निपात भेद द्योतक माने जाते हैं।

मूल- अथाप्युकार एतस्मिन्नेवार्थ उत्तरेण। मृषेमे वदन्ति सत्यमूते वदन्ति इति।

हिन्दी- 'उकार' यह निपात भी इसी विनिग्रह-पृथक्तत्व अर्थ में प्रयुक्त होता है। तथा दो वाक्यों में उत्तर वाक्य के साथ संगत रहता है, जैसे-"मृषेमे वदन्ति सत्यमुते वदन्ति इन दोनों वाक्यों में 'उ' निपात के द्वारा पृथक्त्व दिखाई पड़ता है, वाक्यों का आशय है कि वृषल झूठ बोलते हैं जबकि ब्राह्मण सत्य बोलते हैं।

मूल- अथापि पदपूरणः इदभु तदु।

हिन्दी- 'उ' यह निपात पादपूर्ति के लिए मन्त्र में प्रयुक्त होता है, "इदमु पुरस्ताज्ज्योतिः" तथा तदु प्रत्यक्षतममस्य मन्त्रों में इदमु तथा तदु का वही अर्थ है, जो इदं तथा तद् का है, उकार लगा देने से कोई अर्थ प्रकर्ष नहीं हुआ है, अतः यहाँ पर उकार पद पूरणार्थक है।

मूल- हीत्येषोऽनेक कर्मा। इदं हि करिष्यतीति हेत्वपदेशे। कथं हि करिष्यतीत्यनुपृष्टे। कथं हि व्याकरिष्यतीत्यसूयायाम्॥

हिन्दी- 'हि' यह निपात अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे हेत्वपदेशे - कारण बतलाने में, राम - इस कारण यह कार्य करेगा = रामो हि कार्यमिदं करिष्यति। अनुप्रश्न में भी 'हि' का प्रयोग मिलता है। जैसे-कथं हि देवदत्तः इदं कार्य करिष्यति, देवदत्त इस कार्य को कैसे करेगा। इसी प्रकार-असूया - निन्दा के अर्थ में भी 'हि' निपात का प्रयोग देखा जाता है। जैसे कथं हि व्याकरिष्यति - वह कैसे व्याख्या करेगा, जब कुछ जानता ही नहीं।

मूल- किलेति विद्या प्रकर्षे, एवं किलेति।

हिन्दी- 'किल' यह निपात विद्या प्रकर्ष अधिक जानकारी के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे कोई आचार्य अपने पूर्व आचार्य से ज्ञान प्राप्त कर उसे अच्छी तरह हृदय में अवधारण कर पुनः अपने शिष्यों से अत्यन्त विश्वास के साथ कहता है, एवं किल युद्ध आसीत् महाभारतस्य-इस प्रकार का महाभारत का युद्ध था।

मूल- अथापि 'न' ननु 'इत्येताभ्यां सम्प्रयुज्यतेऽनुपृष्टे। न किलैवं ननु किलैयम्।

हिन्दी- अनु प्रश्न अर्थ में वही 'किल' निपात 'न' अथवा 'ननु' के साथ प्रयुक्त होता है, न किलैवं - क्या ऐसा नहीं है, 'ननु' "किलैवम् = क्या ऐसा है?

मूल- मेति प्रतिषेधे। मा कार्षीः, महार्षीः इति च।

हिन्दी- 'मा' यह निपात प्रतिषेध = निषेध अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे मा कार्षः आकार्यम् - अकरणीय कार्य मत करो, मा हार्षीः पर धनम् = किसी दूसरे का धन मत चुरावों।

मूल- खल्विति च। खलु कृत्वा खलुकृतम्॥

हिन्दी- वेद के छन्दों में 'खल' यह निपात प्रतिषेधार्थीय माना जाता है जैसे खलकृत्वा अर्थात अकृत्वा

न करके, कलुकृत - न कृतम् अर्थात् नहीं किया।

मूल- **अथापि पदपूरणः। एवं खलु तद्भूव इति।**

हिन्दी- वैदिक मन्त्रों के पादपूरण में भी 'खलु नामक निपात प्रयुक्त हुआ दिखाई पड़ता है, जैसे 'एव' खलु तद्भूव'' = उस समय ऐसा हुआ। उदाहृत वाक्य में ''खलु'' का कोई अर्थ विहित नहीं है, यह केवल पादपूर्ति के प्रयुक्त हुआ है।

मूल- **शश्वदिति विचिकित्सार्थीयो भाषायाम्, शश्वदेवमित्यनुपृष्टे। एवं शश्वदित्य स्वयं पृष्टे।।**

हिन्दी- 'शाश्वत' यह निपात लौकिक भाषा में-विचिकित्सा सन्देह के अर्थ में प्रयुक्त होता है, विचिकित्सा-विवेकपूर्वक जिज्ञासात्मक प्रश्न अथवा सन्देह को कहते हैं, मेदिनी कोशकार ने 'शश्वत्' निपात को लौकिक भाषा में ही अनेक अर्थों में प्रयुक्त होना स्वीकार किया है, तद्यथा-

शश्वत्स्यादात्मप्रश्ने सन्देहे चापि मङ्गले।

पुराकल्पे सदार्थे च पुनरर्थे च दृश्यते।।

परन्तु वेद में अनुपृष्टार्थ में, अर्थात् किसी के दुबारा पूछने पर 'शश्वत्' निपात का प्रयोग वाक्यारम्भ में प्राप्त होता है, जैसे-'शश्वत् एवम्' = क्या ऐसा ही है। पुनः अस्वयं पृष्टार्थ-में दूसरे के पूछने पर 'शश्वत्' का प्रयोग वाक्य के अन्त में भी देखा जाता है, जैसे- ''एवं शश्वत्' = हाँ ऐसा ही है।

मूल- **नूनमिति विचिकित्सार्थीयों भाषायाम्।**

हिन्दी- 'नून' यह निपात लौकिक भाषा में विचित्सा के अर्थ में अर्थात् जिज्ञासात्मक प्रश्न के लिए प्रयुक्त होता है।

मूल- **उभयमन्वाध्यायम्। विचिकित्सार्थीयश्च पदपूरणश्चेति।**

हिन्दी- वेद में यहीं 'नूनं' निपात दो अर्थों में प्रयुक्त होता है, वे दोनों अर्थ है, विचिकित्सा और पदपूरण निरुक्तकार ने दोनों अर्थों के लिए भिन्न भिन्न मन्त्रों का उदाहरण प्रस्तुत किया है, पहले मन्त्र में विचिकित्सा अर्थ वाले 'नूनं' निपात का वैदिक ऐतिह्य के साथ प्रस्तुत किया है तथा दूसरे मन्त्र में 'नूनं' निपात का पदपूरणार्थ स्वरूप तृतीय पाद के प्रारम्भ में दिखलाया है।

मूल- **अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरूद्भ्यः सप्रदित्सांचकार, स इन्द्र एत्य परिदेवयाञ्चकेः।।**

हिन्दी- वैदिक आख्यान के अनुसार मैत्रावरुण द्वारा कुम्भ से अगस्त्य मुनि का जन्म माना जाता है। इन्होंने कभी इन्द्र के लिये सोमादि हविः पदार्थ तैयार किया, परन्तु उसे मरुद्गणों को प्रदान कर दिया। इसके वाद इन्द्र स्वयं अगस्त्य ऋषि के पास आकर विलाप करने लगे। ऋग्वेद में इन्द्र द्वारा दृष्ट मन्त्र में 'नून' निपात का प्रयोग विचिकित्सा के अर्थ में यहाँ उदाहरणीय है।

मूल- **न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदयुतम्।**

अन्यस्य चित्तमभिसंरचनेण्य मुताधीतं विनश्यति।। (ऋ.सं. 2/4/10/1)

न नूनमस्त्यद्यतनम्। नो एव श्वस्तनम्। अद्यअस्मिन् द्यवि। द्युरिति अहो नाम धेयं

द्योतते इति सतः। श्वः उपाशंसनीयः कालः। ह्यो हीनः कालः। कस्तद्वेद अदभुतम् -कस्तद् वेद यदभूतम्। इदमपीतरद् अद्भूतमिव। अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यम्। अभिसञ्चारि। अन्यो नानेयः चित्तं चेततेः। उताधीतं विनश्यति इति अप्याध्यातं विनश्यति। आध्यातममिप्रेतम्।

हिन्दी- 'न नूनमस्ति नोश्वः' इस मन्त्र के प्रथम पाद में नूनं' निपात विचिकित्सा - सन्देह के अर्थ में प्रयुक्त है, 'न' पद से मन्त्र किसका निषेध किया गया है यह सुस्पष्ट नहीं होता है, अतः आचार्य यास्क ने मन्त्र में प्रतिषेध के प्राप्त होने पर प्रतिषेध्य की अवश्यं भाविता जानकर तथा तदुत्तर में 'श्व' पद के निषेध्य किये जाने से प्रथमतः अद्यतन का अध्याहार कर मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है - न नूनमस्ति अद्यतनम् = जो हवि आज मुझे नहीं मिली नो एवं श्वस्तनम् = वह कल भी नहीं मिल सकती है, कस्तद्वेद = कौन उसे जान सकता है यद् अद्भूतम् = जो अभी तक हुआ ही नहीं है, अन्यस्य = सज्जनों की श्रेणी में न आने योग्य अधम या अस्थिर बुद्धि वाले का चित्तम् = मन, अभिसञ्चरेण्यं = चञ्चल होता है, क्योंकि इसी कारण मेरे लिये तैय्यार की गयी हवि मुझे न मिलकर मरुद्गणों को मिल गयी।

अद्य का अर्थ है अस्मिन हवि = आज के दिन, द्यु = यह दिन का नाम है, द्योतते इति सतः - क्योंकि यह प्रकाशित होता है, श्वः उपासंसनीयः कालः = 'श्व' यह आने वाले दिन का वाचक शब्द है, हयो हीनः कालः = 'ह्यः' यह अतीत दिवस का वाचक निपात है, कस्तद्वेद - यदभूतम् = उसे कौन जानता है जो अभी हुआ नहीं है, अर्थात् भविष्य के गर्त में है, इदमपीतरद् अद्भुतमभूतामिव = ये जो लोक में अद्भुत - विलक्षण वाचक शब्द है वह भी अभूत में समान ही है, अन्यस्य चित्तमनि सञ्चरेण्यं = अन्य का मन अभिसञ्चारी अर्थात् चञ्चल होता है, अन्यो नानेयः = अन्य का अर्थ है नानेयः = नाना विचार रखने वाला अस्थिर बुद्धिः, अथवा न आनेयः समासु इति अन्यः = अथवा अन्य वह है जो सभाओं में बुलाने योग्य नहीं होता है, चित्तं = चेततेः चिति-सञ्ज्ञाने धातु से चित्त शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है कि जिससे पदार्थों का परिज्ञान किया जाता है, वह चित्त कहा जाता है, उत = और, अधीतं = आध्यातंमाभिप्रेतं = अधिगत हुआ प्राप्त किया गया अर्थ जिसका अभिप्रेत है- वह अधीतं पद से कहा गया है, विनश्यति वह भी नाम नष्ट हो गया।

इति प्रथमाध्याये द्वितीय पादः।

8.4.3 अथ तृतीयः पादः

मूल- **अथापि पदपूरणः।**

हिन्दी- पद पूरण के लिये भी 'नूनं' निपात का प्रयोग मन्त्रों में देखा जा सकता है, एतदर्थ अग्रिम मन्त्र उदाहृत किया जाता है।

मूल- **नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र - दक्षिणा मघोनी।**
शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्-वदेम विदथे सुवीराः॥

हिन्दी- प्रस्तुत मन्त्र में 'नूनं' निपात को पदपूरणार्थ बतलाया गया है, जिसका मन्त्रार्थ में कोई योगदान नहीं है, मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है-

हे इन्द ! जो तुम्हारी यज्ञकर्म में ऋत्विजों को दी जाने वाली दक्षिणा है, वह

यजमान के लिए अभीष्ट अर्थ प्रदान करे तथा ऋत्विजों की कामनाओं को पूरा करें। हे इन्द्र! हमें छोड़कर अन्यों को धनमत दो, पहले हमें देकर ही पश्चात् अन्य किसी को दो, हमारे पास महदैश्वर्य होवे, जिससे हम अपने यज्ञगृहों में पुत्र पौत्रादिकों के साथ'' लाओ खिलावों, पिलावों इन्हें दो उन्हें दो'' इत्यादि शब्द निरन्तर बोलते रहें।

मूल- सा ते प्रतिदुग्धां वर जरित्रे। वरो वरितव्यो भवति। जरिता गरिता। दक्षिणा। मघोनी मधवती। मधमित धननाय धेयम्। मंहतेदनि कर्मणः। दक्षिणा दक्षतेः, समर्द्धयति कर्मणो व्यृद्धं समर्द्धयति इति। अपि वा प्रदक्षिणा गमनात् दिशमभिप्रत्य। दिग्धस्त प्रकृतिः। दक्षिणो हस्तो दक्षते रुत्साह कर्मणः दाशतेर्वा दानकर्मणः। हस्तो हन्तेः प्राशुहंनने देहि स्तोतृभ्यः कामान्। मास्मानतिदंहीः। मास्मानतिहाय दाः भगो नो अस्तु। वृहद्भदेय स्वे वेदने। भगो भजतेः। वृहदिति महतोनामधेयम् परिवृढं भवति। वीरवन्तः कल्याण वीरा वा। वीरावीरयत्यमित्राम्। वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः वीर-यतेर्वा।

हिन्दी- तुम्हारी वह धनवाली दक्षिणा, स्तुति करने वाले यजमान के अभीष्ट को पूरा करे। वर का अर्थ है वरयितव्य = वरण करने योग्य अभिलषणीय पदार्थ। जरिता गरिता का पर्यायवचन है, जरिता का अर्थ है स्तुतिकर्ता, गरिता का अर्थ है अर्थयिता, अर्चा भी स्तुति रूप ही होती है, मधोनी का अर्थ मधवती अर्थात् धनवाली, मध शब्द धन का वाचक है, यह दानार्थक मंह धातु से निष्पन्न होता है, दक्षिणा शब्द समृद्धि अर्थवाले 'दक्ष' धातु से निष्पन्न होता है। क्योंकि दक्षिणा निर्धनता को समाप्त का समृद्ध कर देती है, अथवा दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा की जाती है। इस अभिप्राय से दक्षिणा शब्द की निष्पत्ति की जा सकती है। दक्षिण दिशा का सम्बन्ध दक्षिण हाथ से है, श्रुति का आख्यान है कि पूर्वाभिमुख प्रजापति के दक्षिण हाथ की दिशा का नाम दक्षिणा दिक् हो गया। उत्साहवर्धक दक्ष धातु से दक्षिण शब्द बनता है, चूंकि प्रत्येक कार्य में वही हाथ प्रथमतः उत्साहित होता है, अतः इसे दक्षिण हस्त कहते हैं, अथवा दानार्थक 'दाश्' धातु से दक्षिण शब्द निष्पन्न हो जाएगा, क्योंकि दानादि कार्य दक्षिण हस्त से किया जाता है, अै 'हन्' हिंसागत्यो-धातु से हस्त शब्द निष्पन्न होता है, क्योंकि यह मारने तथा क्रियाशीलता में अतिशीघ्रता से चलता है, स्तुति करने वालों की कामनाओं को पूरा करो हमें छोड़कर अन्यों को पहले दक्षिणा मत दो, हमारे पास भोग्य वस्तुयें होवें, अपने घरों में लावों खिलावो, पिलावो दो, आदि शब्द बहुत बोले। भग का अर्थ धन एवं ऐश्वर्य है, जो भज् सेवायां धातु से निष्पन्न होता है, वृहत् यह महान् का दूसरा नाम है, क्योंकि यह चारो तरफ से दृढ़ = परिपुष्ट होता है। वीरवन्त का अर्थ है कल्याणवीरा अर्थात् उत्तम तथा वीर सन्तान वाले। वीर इसलिये कहा जाता है क्योंकि वह शत्रुओं को अनेक प्रकार से कपाता है। गत्यर्थक 'वी' धातु से औणादिक् रक् प्रत्यय करके वीर शब्द निष्पन्न कर सकते हैं अथवा विक्रान्त अर्थवाला वीर धातु (चु0आ0) से पचाद्यच् तथा णि लोप करके विक्रमवान् = प्रकृष्टपराक्रमवान् असौ वीरः ऐसा शब्द निस्पन्न किया जा सकता है।

मूल- सीमिति परिग्रहार्थीयो वा पदपूरणो वा।

हिन्दी- 'सीम' नामक निपात परिग्रहार्थीय तथा पद पूरणार्थ दोनों होता है, 'सर्वतः' शब्द के अर्थ

को ग्रहण करने वाला निपात परिग्रहार्थीय कहा जाता है, दोनों प्रकार के अर्थ को बतलाने वाले 'सीम' निपात का उदाहरण दिया गया है।

मूल- **प्रसीमादित्योऽअसृजत् (ऋ0 सं0 2/7/9/4)**

प्रासृजदितिवा प्रासृजत् सर्वत इति वा।

हिन्दी- 'प्रसीमादित्योऽअसृजत्'' इसी ऋचा में 'सीम' निपात के दोनों अर्थों को आचार्य यास्क ने प्रदर्शित किया है प्रथमं अर्थ में 'सीम' शब्द पद पूरणार्थक है, वाक्यार्थ है सूर्य ने रश्मियों को छोड़ा, दूसरे अर्थ में सीम-परिग्रहार्थीय है जिसका वाक्यार्थ है सूर्य ने चारो तरफ से रश्मियों को छोड़ा। 'सीम' निपात के परिग्रहहार्थीय होने का एक अन्य उदाहरण भी देते हैं।

मूल- **विसीमतः सुरुचो वेन आवः (शु.प. 13/3)**

इति च। व्यवृणोत् सर्वत आदित्यः। सुरुच आदित्य रश्मयः सुरोचनात्।

हिन्दी- मन्त्र में 'सीम' निपात का परिग्रहार्थीय अर्थ ग्रहण किया गया है, आचार्य यास्क ने मन्त्र खण्ड का यह अर्थ किया है कि सूर्य ने चारों तरफ अपनी रश्मियों को फैलाया सुरुचः आदित्य रश्मियों को कहते हैं, क्योंकि 'सु' उपसर्ग पूर्वक, रूच' दीप्तौ धातु से सुरूचः शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है अच्छी तरह चमकनेवाली किरणें।

मूल- **अपि वा सीमेत्येतद्नर्थं कमुपवन्धमाददीत् पञ्चमी कर्माणं-सीम्नः सीमतः सीमातः मर्यादातः। सीमा मर्यादा विषीव्यति देशाविति।**

हिन्दी- मन्त्र में विसीमतः शब्द आता है। सीम् निपात सर्व के अर्थ में समझना चाहिए, तथा अकार को अनर्थक उपबन्ध मानना चाहिए, तथा 'पञ्चम्याहस्तसित्व सूत्र का विधान 'सीमतः' पद में जानना चाहिए। जिसका अर्थ सर्वतः किया जा सकता है, अथवा नान्त सीमन् शब्द से मर्यादा के अर्थ में तसिलान्त सीमतः शब्द निष्पन्न किया जा सकता है, सीमा मर्यादा को कहते हैं, दो देशों अथवा स्थानों को सिलने-मिलाने वाले स्थान विशेष को सीमा अथवा मर्यादा कहा जाता है।

मूल- **त्व इति विनिग्रहार्थीयं सर्वनामानुदात्तम् अर्धमानेत्येके।**

हिन्दी- निपात प्रकरण में 'त्व' परिगणित होने से सहसा निपात होने का सन्देह न हो जाय, इसलिये आचार्य यास्क ने 'त्व' को विनिग्रहार्थीय-पृथक्करणार्थक सर्वानुदात्त सर्वनाम बतलाया। क्योंकि ''निपाता आद्युदात्ताः'' इस सूत्र से निपात सदैव आद्युदात्त कहे गये हैं, यहाँ पर 'त्व' सर्वाभुदात्त सर्वनाम बतलाया गया है, अतः निपात नहीं हो सकता है। कुछ आचार्य 'त्व' का अर्थ अर्ध भी करते हैं, इसे प्रकरणानुसार समझ लेना चाहिए, जहाँ पर 'त्व' सर्वनाम के अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसे सम्बन्धित मन्त्र का उदाहरण ग्रन्थकार स्वयं प्रस्तुत करते हैं।

मूल- **ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुस्वान्**
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा तो वदति जात विद्याम्
यज्ञस्य मात्रां विममीत उत्वः॥

हिन्दी- होता नाम का एक ऋत्विक् कर्म में ऋग्वेदीय मन्त्रों का पाठ करता है, उद्गाता नाम का एक ऋत्विक् शक्वरी छन्दवाली ऋचाओं पर गायत्र नामक साम का गान करता है ब्रह्मा नाम का एक ऋत्विक यज्ञकर्म में कोई दोष उत्पन्न होने पर तदर्थ प्रायश्चित्तादि करने की अनुज्ञा देता है। अध्वर्यु नामका एक ऋत्विक यत्र के स्वरूप को निश्चित एवं सम्पादित करता है।

प्रस्तुत मन्त्र में 'त्व' यह सर्वनाम पद चारों पादों में प्रयुक्त है, जिसका अर्थ संख्यावाचक 'एक' किया गया है वैदिक यज्ञ कर्म में मुख्यतः चार प्रधान-ऋत्विजों (ब्रह्म-अध्वर्यु-उद्गाता, होता) की आवश्यकता होती है, जिनके पृथक्-पृथक कर्त्तव्यों का निर्देश इस मन्त्र में दर्शाया गया है।

मूल- ऋत्विक् कर्मणां विनियोग माचष्टे। ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुस्वान् होता, ऋगर्चनी।

हिन्दी- ऋत्विजों के कर्त्तव्यों का निर्देश किया जाता है, होता नाम का एक ऋत्विक् ऋचाओं को पुष्ट करता हुआ यज्ञ कर्म को भी पुष्ट करता है, ऋक् शब्द 'अर्च' पूजायां धातु से निष्पन्न होता है।

मूल- गायत्र मेको गायति शक्वरीषूदगाता। गायत्रं गायतेः स्तुति कर्मणः। शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेछः। तद् यद् आभिर्वृत्रमशकद् हन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते।

हिन्दी- उद्गाता नाम का एक ऋत्विक् शक्वरी ऋचाओं पर गायत्रनामक साम का गान करता है, स्तुत्यर्थक 'गै' धातु से गायत्री शब्द निष्पन्न होता है, शक्वरी ऋचाओं का नाम है, 'शक्ल' सामर्थ्ये धातु से शक्वरी शब्द निष्पन्न हो सकता है। ब्राह्मणभाग के एक आख्यान से यह ज्ञात होता है कि जिन ऋचाओं के द्वारा इन्द्र वृत्र को मारने में समर्थ हो सका, उन्हीं ऋचाओं को शक्वरी नाम से कहा गया है।

मूल- ब्रह्मैको जाते जाते विद्यां वदति। ब्रह्मा सर्वविद्यः। सर्व वेदितुमर्हति। ब्रह्मपरिवृढः, श्रुततो ब्रह्म परिवृढं सर्वतः।

हिन्दी- ब्रह्मा नाम का एक ऋत्विक् यज्ञ कर्म में प्रायश्चित्तादि कर्त्तव्यों का निर्देश करता है, क्योंकि ब्रह्मा सभी विधाओं का ज्ञाता होता है। अतः वह सबकुछ ज्ञान सकता है, चारों वेदों का जानकार होने के कारण ऋत्विजों की त्रुटियों को बहुत सरलता से वह जान लेता है तथा समय-समय पर त्रुटि सम्मार्जनार्थ प्रायश्चित्तादि विधियों का निर्देश करता है, ब्रह्मा श्रुति से सर्वविध परिज्ञान से परिपूर्ण होता है।

मूल- यज्ञस्य मात्रां विमिमीत एकोऽध्वर्युः। अध्वर्युरध्वरयुरध्वरं युनक्ति अध्वरस्यनेता अध्वरं कामयते इति वा। अपि वाऽधीयाने युरुपबन्धः।

अध्वरः इति यज्ञ नाम। ध्वरतिर हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः।

हिन्दी- अध्वर्यु नाम का एक ऋत्विक् यज्ञ की मात्रा = इयंत्ता तथा इतिकर्त्तव्यता विनिश्य करता है, अध्वर यज्ञ का नाम है, उसको जोड़ने के कारण 'अध्वरयु' ही अध्वर्यु कहा जाता है, वह यज्ञ को आगे ले जाने वाला नेता कहा जाता है, वह सदैव यज्ञ की पूर्णता की कामना करता है। अथवा अधीयमान अर्थ में 'यु' यह उपबन्ध प्रत्यय हो सकता है, तब अध्वरान्तं वेदमधीयते यः सोऽध्वर्युः इस प्रकार विग्रह वाक्य हो जायगा, जिसका आशय यह होगा कि जो यज्ञ करने एवं कराने तक वेद का अध्ययन करता है वह अध्वर्यु कहलाता है। अध्वर

यज्ञ का नाम इसलिए है कि उसमें किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती है, ध्वर धातु हिंसार्थक है, उसका प्रनिषेध जहाँ होता हो वही अध्वर है।

मूल- **निपात इत्येके, तत्कथमनुदात्त प्रकृतिर्नाम स्यात्। दृष्टव्ययं तु भवति, उतात्वं संख्ये स्थिरपीतमाहुरिति द्वितीयायाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे इति चतुर्थ्याम्।**

हिन्दी- कुछ आचार्य निपात प्रकरण में पठित होने के कारण 'त्व' इस शब्द की गणना निपात में ही करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है, फिर प्रश्न यह होता है कि 'त्व' यह शब्द अनुदात्त प्रकृति वाला सर्वनाम भी कैसे हो सकता है, क्योंकि सर्वनाम तो प्रातिपदिक होते हैं, और प्रातिपदिक "फिषोऽन्त उदात्त" नियम से अन्तोदात्त होते हैं यह 'त्व' तो अनुदात्त है, इस सन्दर्भ मे समाधान दिया गया है कि 'त्व' प्रातिपादिक होते हुए भी अपवाद स्वरूप अनुदात्त है, और प्रातिपादिक इसलिये माना जाता है क्योंकि यह दृष्टव्यय है, जबकि निपात अव्यय तथा आद्युदात्त होते हैं। अतः दृष्टव्यय तथा अनुदात्त प्रकृति होने से 'त्व' सर्वनाम ही है निपात नहीं। इसकी द्रष्टव्ययता 'उतत्वं' संख्ये तथा 'उतो त्वस्मै" मन्त्रों में क्रमशः द्वितीय एकवचन तथा चतुर्थी एक वचन के रूप में स्पष्ट है।

मूल- **अथापि प्रथमा बहुवचने।**
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेस्वसमा
बभूवुः। आदाध्नास, अपकक्षास उत्वे हदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृशे॥
(ऋ. 8/2/24)

हिन्दी- 'त्व' सर्वनाम की दृष्टव्ययता प्रथमा बहुवचन में भी देखी जा सकती है, प्रस्तुत मन्त्र में 'त्वे' के रूप मे उसका प्रयोग किया गया है, मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है। त्वे = एके - कुछ लोग समान नेत्र वाले, समान श्रवणेन्द्रिय वाले तथा समानोदरपृष्ठ पाणिपाद वाले मित्रगण बाह्येन्द्रियों में समान होने पर भी मानसिक बोध की गति में असमान देखे जाते हैं, उनमें से कुछ एक आदध्नासः- मुख तक जल वाले सरोवर के समान अर्थात् अत्यधिक प्रज्ञावान, तथा कुछ एक उपकक्षासः = कांख तक जल वाले सरोवर के समानं अल्पप्रज्ञ तथा कुछ एक स्नान योग्य अगाध जल वाले हद के समान प्रभूत प्रज्ञा सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं।

मूल- अक्षिमन्तः **कर्णवन्तछ सखायः** = स्वस्थ आँख वाले तथा स्वस्थ कान वाले एक डी शास्त्र में समानरूप से परिश्रम करने वाले मित्रगण। **अक्षिचष्टेः दर्शनार्थक चक्षिङ्** धातु से अक्षि' शब्द निष्पन्न हो सकता है, क्योंकि इन आँखों से देखा जाता है। **अन्नेरित्याग्रायगः, तस्मादेते व्यक्ततरे दूव भवत इतिह विज्ञायते-** आचार्य आग्रायग के मत में 'अज्जू' व्यक्ति म्रक्षण कान्तिगतिषु' धातु से भी 'अक्षि' शब्द विष्पन्न किया जा सकता है, क्योंकि ये आँखे अन्य अंगो की अपेक्षा अधिक व्यक्ततर - प्रकाशयुक्त होती है ऐसा ब्राह्मण वाक्य से ज्ञात होता है।

मूल- **कर्णः कृन्तेतःर्निकृत्त द्वारो भवति, ऋच्छतेरित्याग्रायणः ऋच्छन्तीव खे उदगन्तामितिह विज्ञायते।**

हिन्दी- कृतीच्छेदन धातु से 'कर्ण' शब्द निष्पन्न हो सकता है क्योंकि 'कर्ण' सदैव, छिन्नद्वार होता है, अर्थात् उसका द्वार कटा हुआ होता है, आचार्य आग्रायण 'ऋच्छ' गतौ धातु से औणदिक नन प्रत्यय तथा धातु को नुडागम करके कर्ण शब्द की निष्पत्ति मानते हैं, क्योंकि उनका

कहना है कि इसमें ब्राह्मण वचन भी प्रमाण है जिसका आशय यह है कि आकाश में अभिव्यक्त शब्द इन कर्णकुहरों को प्राप्त होते हैं, और ये कर्ण भी उन शब्दों को मानों पकड़ने के लिये अपने को ऊपर उठाये हुये होते हैं।

मूल- **मनसां प्रजवेष्वसमा बभुवुः, आस्यदध्नाः अपरे, उपकक्षदध्ना अपरे, आस्यमस्यतेः स्यन्दत एतदन्नमिति वा।**

हिन्दी- मानसिक गतिशीलता में असमान होते हैं, कोई कोई मुखतक पानी वाले सरोवर की तरह होते हैं, तथा कोई-कोई कांख तक पानी वाले जलाशय की तरह होते हैं आस्य का अर्थ है मुख, यह 'आस्य' शब्द 'असु' क्षेपणे धातु से बनता है, मुख को आस्य इसलिये कहते हैं क्योंकि इसमें अन्न फेंका जाता है, अथवा आङ्पूर्वक स्यन्दू प्रश्रवणे धातु से भी आस्य शब्द बन जायेगा, क्योंकि यह मुख अपने अन्दर डाले गये शुष्क अन्न को भी अपने आन्तरिक रस प्रश्रवण से आर्द बना लेता है।

मूल- **दहनं दध्यतेः श्रवतिकर्मणः दस्यते वा स्यात् विदस्तरं भवति।**

हिन्दी- दहन शब्द स्रवरत्यर्थक 'दध' धातु से बनता है क्योंकि उत्तर परिणाम की अपेक्षा यह न्यून सा होता है, अथवा उपक्षयार्थक 'दसु' धातु से भी 'दहन' बनाया जा सकता है, क्योंकि यह पूर्व परिमाण की अपेक्षा उपक्षीणतर होता है।

मूल- **प्रस्नेया ह्रदा इब एके प्रस्नेया ददृशिरे स्नाना हाः ह्रदो ह्रदाते शब्दकर्मणः ह्लादनर वस्पिपात् शीतीभाव कर्मणः।**

हिन्दी- कोई मित्र सहाध्यायी स्नान करने योग्य ह्रद के समान अगाध पाण्डित्य वाले होते हैं, शब्दार्थ 'ह्रद' धातु से 'हद' शब्द निष्पन्न होता है, अथवा शीत्यार्थक हाद धातु से 'ह्रद' शब्द निष्पन्न किया जा सकता है क्योंकि यह ह्रद = सरोवर, ग्रीष्म काल में भी शीतल रहता है, तथा स्नान करने वालों को आह्लाद = सुख प्रदान करता है।

मूल- **अथापि समुच्चयार्थे भवति-''पर्याया इव त्वादश्विनम्'' आश्विनश्च पर्यायाश्चेति।**

हिन्दी- 'त्वत्' नाम का यह दूसरा निपात भी समुच्चय के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे पर्याया इव-त्वदाश्विनन्'' इस मन्त्रोदाहरण में 'त्वत्' निपात चकार के अर्थ में समुच्चयार्थक बतलाया गया है।

मूल- **अथ ये प्रवृत्तेऽर्थेऽमिताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्य पूरणा आगच्छन्ति, पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिदु इति।**

हिन्दी- इसके बाद अब पद पूरणार्थ निपातों को बतलाया जाता है, सबसे पहले उसका सामान्य लक्षण बताते हैं कि जो निपात, वाक्यगत अन्य पदों के द्वारा अर्थ की पूर्ति हो जाने पर भी गद्यात्मक ग्रन्थों में केवल वाक्य सौष्ठव के लिए प्रयुक्त होते हैं, वे पद पूरणार्थक निपात कहलाते हैं, पुनः वही निपात मिताक्षर = पद्यात्मक ग्रन्थों में पाद के अक्षर संख्या की पूर्ति हेतु प्रयुक्त किये जाते हैं, अतः वहाँ भी ये पदपूरक माने जाते हैं, इस प्रकार के निपात पदपूर्ति के अतिरिक्त किसी अर्थान्तर को प्रकाशित नहीं करते हैं, वे हैं कम्, ईम, इद, उ इति इनका क्रमशः उदाहरण मिरुक्ताकार ने प्रस्तुत किया है।

मूल- **निष्टक्त्रासश्चिदिन्नरो भूरितोका वृकादिव।**
विभ्यस्यन्तो ववाशिरे शिशिरं जीवनाय कम्।।

शिशिरं जीवनाय, शिशिरं शृणातेः शम्नातेरवां।

हिन्दी- प्रस्तुत मन्त्र में 'कम्' यह निपात केवल पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसका कोई अर्थ मन्त्र में प्रकाशित नहीं होता है, मन्त्र का अर्थ है कि कुछ मनुष्य बहुत सन्तान होने के कारण निर्धन हो जाते हैं, तब वे तथा उनके बच्चे वस्त्र की कमी के कारण हेमन्त ऋतु में ठण्डी के भय से भेड़िये से डरे हुए के समान गिड़गिड़ाते हैं, तथा सुखमय जीवन के लिए अल्पशीत वाले शिशिर ऋतु की प्रतीक्षा करते हैं। यहाँ मन्त्र में 'कम्' निपात का कोई अर्थ नहीं बताया गया है। शिशिर शब्द हिंसार्थक 'शृञ्' धातु अथवा 'शमु'उपदेशमें धातु से औणादिक प्रत्यय करने से निष्पन्न किया जा सकता है।

मूल- **''एषेनं सृजता सुते''। आसृजतैनं सुते।**

हिन्दी- प्रस्तुत मन्त्र खण्ड में 'ईम्' यह पादपूरक निपात है मन्त्र का अर्थ है कि हे अध्वर्यु चमस में पूर्वतः रखे गये सोमरस में से इन्द्र का अंश उसे दे दो। यहाँ ईम् का कोई अर्थ नहीं किया गया है।

मूल- **तमिद्वर्धन्तु नो गिरः (ऋ. 7/1/20/4) तं वर्धयन्तु नो गिरः स्तुतयः। गिरो गृणातेः।**

हिन्दी- हमारी स्तुतियाँ देव तृप्ति के लिये उस सोम को बढ़ायें। यहाँ 'इत' शब्द पदपूरणार्थक निपात है, अतः मन्मार्थ में उसका कोई अर्थ नहीं किया गया है।

मूल- **अयमुते समतसि (ऋ. 1/2/28/4) अयं ते समतासि।**

हिन्दी- प्रस्तुत मन्त्र खण्ड में 'उ' निपात पादपूर्ति हेतु प्रयुक्त है, मन्त्र में इसका कोई अर्थ नहीं बतलाया गया है, मन्त्र का अर्थ है, हे इन्द्र जिस सोम के लिये तुम यज्ञों में जाया करते हो वही तुम्हारा प्रिय सोम यहाँ लाया गया है।

मूल- **इवोऽपि दृश्यते-सुविदुखि सुविज्ञायेते इव।**

हिन्दी- कहीं - कहीं उपमार्थक इव निपात भी मन्त्र में पदपूरणक के रूप में दिखाई पड़ता है, जैसे सुविदुरिव, सुविज्ञायेते इव' इन दोनों मन्त्र वाक्यों में इव का उपमा अर्थ नहीं है, अपितु 'इव' का प्रयोग पादपूरणार्थ का किया गया है।

मूल- **अथापि नेत्येव इतइत्यनेन सम्प्रयुज्यते परिभये।**

हविर्भिरिके स्वरितः सचन्ते सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान्।

शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिर्नेज्जिघ्रायन्त्यो नरकं पताम॥

हिन्दी- अब यहाँ से निपात समाहार = दो निपातों के सहोचारण से अर्थविशेष का निरूपण प्रारम्भ किया जाता है, जैसे न और इत् का सहोच्चारण परिभय के अर्थ में किया गया है, पूर्वोक्त 'इत्' निपात अकेले प्रयुक्त होने पर पादपूरणार्थक होता है, परन्तु वही जब के साथ प्रयुक्त होता है तब परिभय - सवतोभय (डर) अर्थ को प्रकाशित करने लगता है, जैसा कि मन्त्र के चतुर्थ चरण में दिखाई पड़ता है।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है, अपने-अपने पतियों से उपेक्षित असुर पत्नियां देवर्षि नारद से कहती

हैं, कि हे प्रभो! कुछ लोग तो, पुरोडाशादि हविर्द्रव्य देवताओं को प्रदान कर स्वर्ग लोक प्राप्त कर लेते हैं, कुछ लोग सोम याग करके तथा कुछ लोग अपनी प्रार्थनाओं से देवताओं को प्रसन्न करके तथा कुछ लोग ऋत्विजों को पर्याप्त दक्षिणा प्रदान कर स्वर्ग सुख को प्राप्त ही कर लेते हैं परन्तु बड़े दुःख की बात है कि हम असुर पत्नियाँ अपने पतियों से कपट का आचरण करती हुयी नरक में गिर रही हैं। यहाँ 'नेत्' पद में 'न' तथा इत् का संप्रयोग है जो असुर पत्नियों के आन्तरिक भय (डर) को प्रकट कर रहा है।

मूल- **नरकं न्यरकं नीचैर्गमनम् । नास्मिन् रमणं स्थान मल्पमप्यस्तीति वा।**

हिन्दी- जिसमें निरन्तर नीचे ही जाना पड़ता हो, उसे नरक कहते हैं अथवा जिसमें थोड़ा भी सुखदायक स्थान न हो, उसे नरक कहते हैं।

मूल- **अथापि न चेत्यष इदित्यनेन सम्प्रभुज्यतेऽनु पुष्टे, न चेत् सुरां पिबन्ति इति। सुरा सुनोते।**

हिन्दी- 'न' तथा 'च' यह दोनों निपात जब 'इत' निपात के साथ संप्रयुक्त होते हैं, तब अनुपृष्ट अर्थ को प्रकाशित करते हैं जैसे 'न चेत् सुरा पिबन्ति। इस वाम्प में 'नचेत्' इस सहोच्चारित निपात का अर्थ अनुवृष्ट बतलाया गया है।

मूल- **एवमुच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति व उपेक्षितव्याः।**

हिन्दी- इस प्रकार विभिन्न प्रकार के अर्थों में निपात प्रयुक्त किये जाते हैं, उन्हें निवर्चन की रीति से परीक्षण कर लेना चाहिए।

मूल- **इतीमानि चत्वारि पदजातानि अनुक्रान्तानि, नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च।**

हिन्दी- इस प्रकार नाम आख्यात उपसर्ग और निपात ये चार प्रकार के पदसमुदाय क्रमशः वर्णित कर दिये गये।

इति तृतीय पाद :।

8.4.4 अथ चतुर्थः पादः

मूल- **तत्र नामानि आख्यातजानि इति शाकटायनो-नैरक्त समपश्य।**

हिन्दी- उपर्युक्त पादों में क्रमशः नाम-आख्यात-उपसर्ग और निपातों का विवेचन किया गया है, उनमें नाम, आख्यात से ही उत्पन्न होते हैं, अतः उन्हें, आख्यातज कहा जाना चाहिए। ऐसा ही आचार्य शाकटायन का मत तथा निरुक्तकारों का सिद्धान्त समझना चाहिए।

मूल- **न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके।**

हिन्दी- आचार्य गार्ग्य तथा कुछ वैयाकरण सभी नामों को आख्यात से उत्पन्न (आख्यातज) नहीं मानते हैं।

मूल- **तद् यत्र स्वर संस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्थानाम् संविज्ञातानि तानि। यथा गौः, अश्वः पुरुषों हस्तीति।**

हिन्दी- नाम पदों से आख्यातज मानने के लिये प्राचीन निरूक्तकारों द्वारा तीन प्रकार की व्यवस्था

बतलायी गयी है। (1) प्रत्यक्ष क्रिया वाले नामपद, (2) प्रकल्प्य क्रिया वाले नाम पद, (3) अविद्यमान क्रिया वाले नाम पद, मूल में 'तद्' पूर्वोक्त गार्ग्यमत का अनुशरण करता है, तदनुसार-जिन नाम पदों में उदात्तादि स्वर तथा प्रकृति प्रत्यय सम्बन्ध प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता हो, तथा जो शब्दशास्त्रीय नियमों से सुसंगत हो, उन्हे ही आख्यातज नाम कहा जाना चाहिए, जैसे-कर्ता, कारकः पक्ता, पाचकः इत्यादि। क्योंकि कर्ता में 'कर्ता' नाम में 'कृ' धातु तथा वृच् प्रत्यय तथा 'कारक' पद में 'कृ' धातु तथा वुन् प्रत्यय स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु जिन नामों में स्वर और संस्कार व्याकरण नियमों से प्रत्यक्ष न दिखाई पड़ते हों, बल्कि उनकी कल्पना द्वारा सुसंगत किया गया हो, उन्हें द्वितीय कोटिका प्रकल्प्या ख्यातज नाम कहा जाना चाहिए, जैसे गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती आदि। अविद्यमानाख्यातजनाम तो डित्थ, डवित्थ अवाङ् अरविन्द आदि के रूप में गिनाये गये हैं। प्रदेश, क्रिया को कहा जाता है, प्रादेशिक गुण का तात्पर्य है कि जिस क्रिया को आधार मानकर नाम की स्थापना की गई हो, वह नाम प्रादेशिक गुण वाला कहा जाता है।

मूल- **अथ चेत् सर्वाणि आख्यातजानि नामानि स्युः यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथा आचक्षीरम्। यः कश्च अध्वानमश्नुवीत अश्वः सवचनीयः स्यात्। यत् किञ्चित् तृन्द्यात् तृणं तत्।।**

हिन्दी- आचार्य गार्ग्य सभी नामों को आख्यातज नहीं मानते हैं, उनका आक्षेप यह है कि यदि सभी नाम आख्यातज मान लिये जायेंगे तो जो कोई पुरुष जिस कार्य को करेगा, उसी कार्य के क्रियावाचक आख्यात द्वारा उसके नाम का अभिधान होते लगेगा, जैसे अंशूङ् व्याप्तौ धातु से निष्पन्न अश्व शब्द, मार्ग को अपनी गति से व्याप्त करने के कारण आख्यातज है परन्तु सभी नाम आख्यातज मानने पर, जो कोई पुरुष भी मार्ग को अपनी तेज गति से व्याप्त कर लेगा, तो वह भी अश्व कहा जाने लगेगा, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार जो कुछ भी तर्दन-छेदन किया जाय, वह तर्दन क्रिया योग से तृण कहा जायेगा, जबकि छेदन बहुत से वस्तुओं का किया जाता है, परन्तु सभी को तृण नहीं कहा जाता है, इसलिये सभी नामों को आख्यातज मानना उचित नही है।

मूल- **अथापि चेत् सर्वाणि आख्यातजानि नामानि स्युः यावद्भिर्भावैः सम्प्रयुज्येत तावद्भ्यो नामधेय प्रतिलम्भः स्यात्। तत्रैव स्थूणा शदया वा सज्जनी च स्यात्।**

हिन्दी- दूसरे भी कारण से सभी नाम आख्यातज नहीं कहे जा सकते हैं, वह यह है कि यदि सभी नामों को आख्यातज मानेंगे, जो एक ही वस्तु यदि अनेक क्रियाओं से संयुक्त होता है तो उसके अनेक नाम हो जाएंगे, तथा अनेक वस्तु यदि एक क्रिया से संयुक्त हैं तो उन सभी वस्तुओं का भी एक ही नाम हो जाएगा। जैसे एक ही स्थूणाखम्भा, दर-गर्त में शयन करने के कारण 'दरशया' भी कहा जा सकता है, परन्तु लोक में खम्भा को दरशया नहीं कहा जाता है। इसी प्रकार 'सज्जयतेऽस्यां वंशः इति सज्जनी' इस निर्वचन के अनुसार स्थूणा खम्भा के ऊपर छाजन होने के कारण एक नाम सज्जनी भी होना चाहिए, परन्तु नहीं होता है, अतः सभी नामों को आख्यातज कहना युक्ति संगत नहीं है।

मूल- **अथापि य एषां न्यायवान् कार्मनामिकः संस्कारो, यथा चापि प्रतीतार्थानि**

स्युस्तथैतान्याचक्षीरन् पुरुषं पुरिशयः इत्याचक्षीरन्। 'अष्टा' इति अश्वम् तर्दमिति तृणम् ॥

हिन्दी- एक दूसरे कारण से भी सभी नाम आख्यातज नहीं कहे जा सकते हैं, वह यह है कि यदि सभी नाम आख्यातज माने जायेंगे, तो उन नामों में जो लक्षणात्मक कृत्प्रत्ययात्मक संस्कार किये जाते हैं, उनसे क्रिया प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है उन प्रत्यक्ष दृष्ट क्रियाओं के साथ ही उन नामों को कहना चाहिए, परन्तु ऐसा लोक व्यवहार में नहीं कहा जाता है, पुरुष को पुरिशयः अश्व को अष्टा, तथा तृण को तर्दन नहीं कहा जाता है, इससे स्पष्ट है कि सभी नामों को आख्यातज कहना उचित नहीं है।

मूल- अथापि निष्पन्नेऽभि व्याहारेऽभिविचारयन्ति - प्रथनात् पृथिवीत्याहुः। क एनामप्रथयिष्यतः? किमाधारश्च इति।

हिन्दी- अभिव्याहार पद से नाम करण कहा जाता है, लोक में किसी का कोई नाम प्रसिद्ध हो जाने के अनन्तर, उसके नामकरण पर विचार करते हैं, जैसे पृथिवी नाम भूमि का प्रसिद्ध है, इसपर शाकटायन आदि निरक्ताचार्य विचार करते हैं कि विस्तारार्थक प्रथन धातु से पृथिवी नाम बाद में पड़ा होगा, परन्तु यदि पृथिवी का नामकरण उसके आख्यातज होने के कारण माना जाय, तो यह प्रश्न उदित होता है कि कौन इसका प्रथन किया होगा? तथा उसका तथा पृथिवी का आधार क्या रहा होगा? इस प्रश्न का कोई सार्थक एवं समुचित समाधान न मिलने के कारण पृथिवी को आख्यातज नहीं माना जा सकता, इस प्रकार सभी नाम आख्यातज नहीं हो सकते यह जो गार्ग्य आचार्य का पक्ष है वह चरितार्थ होता है।

मूल- अथानन्वितेऽर्थेप्रादेशिके विकारे पदेभ्यः पदेत-रार्धान् संस्कार शाकटायनः। एतेः कारितं च यकारादिचान्तः करणम्, अस्तेः शुद्धं च सकारादिं च।

हिन्दी- धातुज नामों की सिद्धि करने के लिये आचार्य शाकटायन ने एक अतिरिक्त पद्धति का भी निर्देश किया है, उनके अनुसार जहाँ कहीं एक धातु से नाम का अर्थ सुसंगत न होता हो, वहाँ दो-दो धातुओं से निष्पन्न पदों से एक-एक अंश लेकर पूर्वोत्तर पदावयव की प्रकल्पना कर लेनी चाहिए, जैसे- सत्यं शब्द सिद्ध करने के लिए 'इण्गतौ' धातु के णिजन्त रूप से 'य' अंश लेकर पद के अत्य अवयव के रूप में रखते हैं, पुनः 'अस भुवि' धातु का शुद्धरूप 'सत्' अंश का आदि में रखकर - 'सत्य' नाम निष्पन्न कर लेते हैं, जिसका अर्थ होता विद्यमान का बोध कराने वाला ज्ञान।

मूल- अथापि सत्त्वपूर्वोभाव इत्याहुः। अपरस्मात् भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यते इति।

हिन्दी- नामों के आख्यातज मानने पर एक दूसरा दोष यह दिखाई पड़ता है कि जब उत्तर कालीन् क्रिया से पूर्व कालिक द्रव्य का नामकरण किया जाता है, जबकि द्रव्य पूर्वक ही क्रिया होती है, ऐसा प्राचीन आचार्यों ने पहले ही बतला दिया है, जैसे अश्व नाम पहले प्राप्त होता है, बाद में ''अश्नुते अध्वानम्'' इति क्रिया द्वारा उसका निर्वचन किया जाता है, क्रिया पहले हो नाम वाद में पड़े ऐसा लोके में नहीं देखा जाता है, अतः इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी नाम आख्यातज नहीं कहे जा सकते हैं।

मूल- तदेतन्नोषपद्यते।

हिन्दी- सभी नाम आख्यातज नहीं हो सकते हैं यह जो गार्ग्य का पक्ष है वह ठीक नहीं है। क्योंकि आचार्य गार्ग्य ने जिन कारणों से नामों मके आख्यातज होने का निषेध किया है, उन्हीं कारणों में समाधान बतलाकर शाकटायनादि आचार्यों का आख्यातज सिद्ध किया है।

मूल- यथो हि नु वा एतद् तद् यत्र स्वर संस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्याताम्, सर्व प्रादेशिक मिति। एवं सत्यनुपालम्भ एष भवति।'

हिन्दी- गार्ग्यादि आचार्यों ने यह जो कहा, कि जिस नाम में स्वर-और संस्कार शाब्दिक व्युत्पत्ति की रीति से उपनन्न होते हों, उन्हीं को मात्र आख्यातज कहा जा सकता है, अन्य को नहीं इसका समाधान शाकटायनादि के पक्ष से यह दिया गया है कि ''सर्वं प्रादेशिकमिति'' हमारा तो पक्ष ही यह है सभी नाम प्रादेशिक हैं अर्थात् व्याकरण प्रक्रिया से व्युत्पन्न हो सकने योग्य होने के कारण आख्यातज हैं, ऐसी स्थिति में किसी उपालम्भ का अवसर ही नहीं है।

मूल- यथो एतद् यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत्सत्वं तथाचक्षीरन इति, पश्यामः समान-कर्मणां नामधेय प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषाम्। यथा-तक्षा, परिव्राजको, जीवनो, भूमिज इति।

हिन्दी- निरूक्तकार यास्क, आचार्य शाकटायन के पक्ष में आश्रय लेकर कहते हैं कि 'सभी नाम आख्यात हैं' इस शाकटायन के सिद्धान्त पर जो आक्षेप करते हैं, उनका यथोक्तरूप से खण्डन हो जाता है, क्योंकि शाकटायन का अभिप्राय यह नहीं है कि जो कोई जिस किसी कार्य को करता है, तो वह उस क्रिया के योग से अभिहित किया जाता है, बल्कि उनका अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति अनेक क्रिया से युक्त होने पर भी, अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा समान क्रिया किये जाने पर भी, स्वभावतः और नियमतः जो जिस क्रिया के साथ युक्त रहता है वही उस क्रिया के अभिधान से अभिहित किया जाता है, सभी नहीं। जैसे लोक में तक्षा नाम बढ़ई का है क्योंकि वह तक्षण क्रिया (काष्ठों को छिलना, काटना, बनाना, आदि अनेक कर्म) से स्वभावतः एवं नियमतः युक्त रहता है, यदा-कदा अपने किसी प्रयोजन से काष्ठ छिलने या काटने वाले को 'तक्षा' = बढ़ई पद से व्यवहार नहीं किया जाता है, इसी प्रकार व्रजन का अर्थ गमन होता है, 'परि' उपसर्ग परित्याग अर्थ को द्योतित करता है, इस प्रकार अपने भरे पूरे परिवार को रोता बिलखता छोड़कर घर से निकल जाने वाले को परिव्राजक (सन्यासी) नाम से अभिहित किया जाता है न कि अपने प्रयोजन से गमन करने वाले सभी को परिव्राजक कहा जा सकता है। इसी प्रकार जीवनाधायक होने के कारण 'जीवन' शब्द गन्ने के रस के लिये कोषादि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है, परन्तु जीवनाधायक बहुत से पदार्थ हैं वे सभी 'जीवन' नाम से नहीं कहे जाते हैं। इसी प्रकार 'भूमिज' नाम भूमिपुत्र मङ्गल के लिए प्रसिद्ध है, जबकि भूमि से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों का नाम भूमिज नहीं कहा जाता है, अतः यही कहना युक्तिसंगत है कि जिस किसी का स्वभावतः एवं नियमतः जिस क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है, वही उस क्रिया के सम्बन्ध से अभिहित किया जाता है, सभी नहीं।

मूल- यथो एतद्यथा चापि प्रतीतार्थानि स्युस्त थैना-न्याचक्षीरन्निति। सन्त्यल्पप्रयोगाः कृतोप्यैकपदिका यथा-व्रततिः दमूना, जाटयः, आरणारो, जागरुको, छर्विहोधीति।

हिन्दी- गार्ग्यादि आचार्यों का यह आक्षेप कि यदि नाम आख्यात माने जायेंगे, तो जिस धात्वर्थ की प्रतीति जहाँ होगी, वहाँ ही तादृश नामधेय होने लगेगा, जैसे पुरुषः, का दूसरा अभिधान पुरिशयः, अश्व का दूसरा अभिधान अष्टा भी हो सकता है, निरुक्तकार ने शाकटायन के पक्ष से इसका समाधान बताया है कि इस प्रकार के नाम शास्त्रों में अत्यल्पमात्रा में देखे जाते हैं, तथा जहाँ कहीं हैं भी तो वहाँ वे किसी एक नाम के लिये रुढ़ अथवा प्रसिद्ध है, जैसे व्रतति' यह अभिधान - वृषवरणे, तथा तनु-विस्तारे दोनों धात्वर्थ वल्ली-लता के लिये प्रसिद्ध है, दमूना का निर्वचन अग्नि के लिये यथार्थ है, जाटच शब्द जटावान के लिये प्रयुक्त होता है, आह्णार-शब्द अप्नशील के लिए कहा गया है जागरूक शब्द जागरणशील के लिये प्रयुक्त होता है, जो सदैव दर्वी (करछुली) के हवन करता हो, उसे दर्वी हो भी कहा जाता है,। धात्वर्य की प्रतीति मात्र होने से सर्वत्र अभिधान नहीं किया जा सकता है।

मूल- यथो एतान्निस्पन्नेऽभिव्याहारेऽभिविचारयन्तीति भवति हि निष्पन्नेऽभिव्याहारे योग परिशिष्टिः।

हिन्दी- गार्ग्यादि आचार्यों का दूसरा आक्षेप यह है कि आख्यातज नाम के सिद्ध हो जाने पर शाकटायनादि आचार्य उस नाम के अवयवार्थ पर विचार करते हैं, इसका समाधान यह दिया जाता है कि -शाकटायनादि आचार्य ठीक ही तो करते हैं क्योंकि नाम के आख्याज सिद्ध हो जाने पर ही तो उसके अवयवार्थ की परीक्षा की जाती है।

मूल- प्रथनात् पृथिवीत्याहुः क एनामप्रथमिस्यत् किमाधारश्चेति अथ वै दर्शनेन पृथुरप्रथितो चेदप्यन्यैः।

हिन्दी- नाम के आख्यातज होने पर उसके अवयवार्थ के विचार के सम्बन्ध में यह उदाहरण दिया जाता है कि दृश्यमान यह पृथिवी 'पृशु' विस्तारे धातु के योग से निष्पन्न मानी जाती है, क्योंकि फैली हुयी पृथिवी को देखकर 'पृथु' धातु का योग किया जाता है, अन्यथा धात्वर्थ उपपन्न नहीं होगा। यद्यपि इस पृथिवी को किसने विस्तारित किया तथा उस विस्तार के समय कौन सा आधार था। इत्यादि प्रश्नों का यथोचित उत्तर नहीं दिया जा सकता, फिर भी किसी के द्वारा विस्तारित किया जाना ज्ञान न होने पर भी लोक दृष्टि में विस्तारित दिखाई पड़ने के कारण इसको 'पृथिवी' कहा जाना आख्यातज नाम के सर्वथा अनुरूप है।

मूल- अथाप्येवं सर्व एव दृष्टप्रवादा उपालभ्यन्ते।

हिन्दी- किसी वस्तु को देखकर तदनुरूप प्रकृति प्रत्यय की कल्पना करने वाले सिद्धान्त को 'दृष्टप्रवाद' कहा जाता हैं, यह यद्यपि लोक में उपलम्भित-निन्दित माना जाता है। तथापि प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति एवं प्रत्यय का सम्बन्ध बोध कराने के कारण वैदिक विद्वानों के द्वारा समादृत भी माना जाता है।

मूल- यथो एतत्पदेभ्यः पदेतरार्थान्त्संचस्कारेति योऽनन्वितेऽर्थे संचस्कार स तेन गर्ह्यः सैषा पुरुष गर्हा न शास्त्रगर्हा इति।

हिन्दी- और भी गार्ग्यादि पक्ष से यह जो आक्षेप किया गया था कि शाकटायनादि आचार्यों द्वारा जे

कई पदों से थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर शब्द निर्वचन किया जाता है वह ठीक नहीं है सो उसका समाधान यह है कि यदि शाकटायनादि किसी असम्बद्ध अर्थ में शब्दनिर्वचन किये होते, तो अवश्य निन्दा के पात्र माने जाते, परन्तु उन्होंने तो सर्वथा अन्वित अर्थात् शास्त्रानुगत अर्थ में ही शब्द निर्वचन किया है, जैसे 'सत्य' शब्द से निर्वचन हेतु उन्होंने दो पदों से थोड़ा-थोड़ा अंश लिया है, जो शास्त्रामुगत है परन्तु जो कोई असंगत अर्थ में शब्द का निर्वचन करता है, वह अवश्य ही निन्दनीय है, और यह उसके अल्पज्ञता का दोष है, शास्त्र का दोष नहीं है।

मूल- **यथो एतद् अपरस्माद् भावात् पूर्वस्य प्रदेशो-नोपपद्यत इति। पश्यामः पूर्वोत्पन्नानां सत्त्वाना मपरस्माद् भावात् नामधेय प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषाम्। यथा विल्वादो लम्बचूडक इति। विल्वं भरणाद् वा भेदनाद्वा।**

हिन्दी- पूर्व में यह जो आक्षेप किया गया था कि उत्तरकालिक क्रिया के द्वारा पूर्वोत्पन्न द्रव्यों का नामकरण करना उचित नहीं है, सो इसका समाधान यह किया जाता है कि लोक में ऐसे अनेक उदाहरण देखे जाते हैं जिसका सम्बन्ध भविष्य में होने वाली क्रिया के साथ होता है। फिर भी उसका नामकरण पूर्व में ही कर दिया जाता है। जैसे किसी बालक का नाम विल्वाद अथवा लम्बचूड रख दिया गया। 'द्वादशे पिता नाम कुर्यात्' इस विधि के अनुसार जन्म के बारहवें दिन नामकरण किया जाता है, नामकरण के समय 'विल्वं अति', अथवा 'लम्बाचूडा यस्य' नाम का यह निर्वचन उपपन्न नहीं है तथापि उत्तरकालिक क्रिया के योग से यह नामकरण सार्थक माना जाता है। इसी प्रकार बिल्व फल का नामकरण भी परमेश्वर ने उसके उत्तरकालिक क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण किया है, 'बिल्वं भरणाद्वा भेदनाद् वा'' निर्वाचन से ज्ञात होता है कि विल्वफल, खाने वाले का भरण करता है, तथा खाने के समय वह अवश्य फोड़ा जाता है इसी उत्र कालिक क्रिया 'भरण' तथा 'भेदन' के द्वारा बिल्व फल का बिल्व नामकरण सार्थक एवं उपपन्न होता है।

इति चतुर्थः पादः

8.4.5 अथ प्रथमाध्याये पञ्चमः पादः

मूल- **अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यते, अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोहेशः। तदिदं विद्या स्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थ साधकञ्च।**

हिन्दी- निरुक्तकार यास्क 'अथ' शब्द के द्वारा निरुक्तशास्त्र के मुख्य प्रयोजन को प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा करते हैं। निरुक्त शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है, मन्त्रों का यथार्थ परिज्ञान अतः ग्रन्थकार यह निर्देश करते हैं कि निरुक्तशास्त्र को जाने बिना मन्त्रों का अर्थपरिज्ञान नहीं हो सकता है, अर्थ बोध नहीं होने पर स्वर-संस्कारों का उपदेश भी निरर्थक हो जाता है, अतः मन्त्रों का अर्थबोध कराने के कारण यह निरुक्तशास्त्र व्याकरण शास्त्र का पूरक तथा शास्त्रानुमोदित अर्थ का परिज्ञान कराने के कारण स्वार्थ साधक भी कहा जाता है।

मूल- **यदि मन्त्रार्थ प्रत्ययाय, अनर्थकं भवतीति कौत्सः। अनर्थका हि मन्त्राः**

तदेतेनोपेक्षितव्यम्।

हिन्दी- यदि निरुक्तशास्त्र का प्रयोजन मन्त्रार्थ परिज्ञान के लिए है, तो यह अनर्थक अर्थात् व्यर्थ है क्योंकि आचार्य कौत्स के अनुसार मन्त्रों का अपना कोई अर्थ नहीं होता है, वे यज्ञादिकर्मों में उच्चारण मात्र से कृतार्थ माने जाते हैं मन्त्रों के अर्थराहित्य को निम्नलिखित प्रकार से अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

मूल- नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति।

हिन्दी- आचार्य कौत्स जिन-जिन कारणों से मन्त्रों को अर्थरहित मानते हैं उनको क्रमशः उपस्थापित किया जाता है, जिनमें सबसे प्रथम कारण यह बतलाया जा रहा है कि वेद मन्त्रों में पद विन्यास तथा उनका पौर्वापर्य निश्चित होता है जैसे 'अग्निमीडे पुरोहितं' मन्त्र को शब्दान्तर से 'बर्हिमीडे पुरोधसं' अथवा पुरोहित मग्निमीडे' अनियत आनुपूर्वी से उच्चारित नहीं किया जा सकता है, जबकि लोक में अर्थवशात् पदों का स्थल परिवर्तन भी किया जा सकता है, जैसे 'जलमानय' वाक्य को आनयं जलं, देहि पानीयं, नीरं प्रयच्छ, आदि वाक्यों के द्वारा भी कहा जा सकता है, क्योंकि इन पदों में अर्थ बोध एक समान होता है, अतः कह सकते हैं कि वेद मन्त्रों में पदानुपूर्वी नियत होने के कारण उनमें कोई अर्थ नहीं होता है। उनका अपरिवर्तित स्वरूप ही अलौकिक श्रेयःसाधक माना जा सकता है।

मूल- अथापि ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्ते ''उरु प्रथस्वेति प्रथयति'' प्रोहाणीति प्रोहति।

हिन्दी- आचार्य कौत्स मन्त्रों के अर्थरहित होने में यह दूसरा कारण बतलाते हैं कि मन्त्रों में स्वतः अपने अर्थ को व्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं होता, इसीलिये उनके अर्थों को ब्राह्मण वाक्यों के द्वारा व्यक्त किया जाता है, तदनुसार उन्हें वैदिक कर्मों में विनियुक्त किया जाता है, जैसे उरु प्रथस्वोरुते यज्ञपतिः प्रथताम् ''यह मन्त्र प्रथन-विस्तारण अर्थ को स्वयं नहीं व्यक्त करता है, अपितु उरुप्रथ स्वेति प्रथयति'' इस ब्राह्मण वाक्य के द्वारा पुरोडाश प्रथन में विनियुक्त किया जाता है, इसी प्रकार प्रोहण कर्म के लिये जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका विनियोग भी ब्राह्मण वाक्य के द्वारा किया जाता है, इससे यही तथा उद्गत होता है कि मन्त्र अपने अर्थ को स्वयं नहीं व्यक्त करते हैं, वे तो ब्राह्मण वचनों के द्वारा ही कृतार्थ होते हैं अतः निरर्थक कहे सकते हैं।

मूल- यथाप्यनुपपन्नार्था भवन्ति, ओषधे! त्रायस्वै-नम्। स्वधिते मैन ꣳ ति ꣳ सीः इत्याह हिंसन्।

हिन्दी- मन्त्र के अनर्थक कहने में यह दूसरा कारण बतलाया जाता है, कि मन्त्रों की अर्थ अनुपपन्न = असंगत होता है, जैसे ''ओषधे त्रायस्वैनं'' इस मन्त्र का विनियोग बालक के चूड़ाकरण के समय उसके दक्षिण कर्ण के उपर के केश' में स्थापित कुशपत्र के छेदन में किया गया है। वहाँ पर कुशपत्र केश के साथ स्वयं कर्तित होता है, वह बालक की रक्षा कैसे करेगा, जबकि अर्थानुसार वहाँ रक्षा करने की प्रार्थना व्यक्त होती है, इसी प्रकार ''स्वाधिते मैंने'' हिंसीः'' यह मन्त्र क्षुर के लिये विनियुक्त है, जो स्वतः केश कर्तन रूप हिंसा कर रहा है, उसी से हिंसा न करने की प्रार्थना की जा रही है, जो असंगत है। अतः असंगत अर्थ के कारण मन्त्र अनर्थक कहे जाते हैं।

मूल- **अथापि विप्रतिसिद्धार्था भवन्ति, एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः। असंख्याता सहस्त्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। अशुत्ररिन्द्र जज्ञिसे। शतं सेना अजयत् साकमिन्द्र :।**

हिन्दी- मन्त्र के अनर्थक कहे जाने में यह भी एक कारण है कि मन्त्रों के परस्पर विरुद्ध अर्थ दिखाई पड़ते हैं जैसे एक मन्त्र में कहा गया है कि एक ही रुद्र उत्पन्न हुआ। दूसरा कोई नहीं, परन्तु दूसरे मन्त्र में इसके ठीक विपरीत कहा गया है कि पृथिवी पर हजारों की संख्या में रुद्र उत्पन्न हुये हैं। इसी तरह एक मन्त्र में इन्द्र को अजात शत्रु बतलाया गया है वहीं दूसरे मन्त्र में इन्द्र के द्वारा सैकड़ो शत्रु सेनाओं को जीतने की भी बात कही गयी है इस तरह परस्पर विरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक होने के कारण भी मन्त्रों को अनर्थक कहा जा सकता है।

मूल- **अथापि जानन्तं सम्प्रेष्यति, अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रूहीति।**

हिन्दी- स्वाध्याय काल में ही ऋत्विजों को अपने - अपने कर्त्तव्य की जानकारी करा दी जाती है, फिर भी यज्ञ के समय अध्वर्युः होता को वही वही कार्य करने के लिए आदेश देता है, जिसको वह पहले से जानता है, 'अग्नसे समिध्यभानाय अनुब्रुहि'' (श0ब्रा0 1/3/2/3) अर्थात् प्रदीप्त होने वाले अग्नि के लिये मन्त्रोच्चारण करो। भला कौन नहीं जानता है कि आग्नि में आहुति तभी डालनी चाहिए, जब वह प्रज्जवलित हो। इस प्रकार विज्ञात अर्थ के सम्प्रेषण से मन्त्र का आनर्थक्स ही सिद्ध होता है।

मूल- **अथाप्याह - 'अदितिः सर्वम्' इति अदितिद्यौ रदितिरन्तरिक्षमति'' तदुपरिष्टाद् व्याख्यास्यामः।**

हिन्दी- मन्त्र के अनर्थक होने मे यह भी एक कारण है कि मन्त्र में अदिति को ही सब कुछ कह दिया है, जैसे ''आदितिद्यौरदितिरन्त रिक्षमिति'' इस मन्त्र की व्याख्या आगे की जाएगी।

विशेष- मंत्र में अदिति को द्यलोक तथा अन्तरिक्ष लोक माता पुनः पिता, पुत्र आदि परस्पर विरुद्ध अर्थ से युक्त किया गया है, जो व्यावहारिक दृष्टि से उपपन्न नहीं हो सकता है, इस कारण से मन्त्रों को अनर्थक बतलाया जा सकता है।

मूल- **अथापि अविस्यष्टार्था भवन्ति, अम्यग् यादृश्मिन् जारयायि, काणुका, इति।**

हिन्दी- मन्त्र के अनर्थक कहे जाने में यह भी एक कारण है कि कतिपय अम्यक्, यादृश्मिन्, जारयायि, काणुका प्रभृति मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाते हैं।

विशेष- उपर्युक्त सात कारणों को दिखलाकर आचार्य कौत्स वेद मन्त्रों को अनर्थक सिद्ध करना चाहते हैं, तत्कालीन अन्य आचार्यों की दृष्टि में मन्त्र उपर्युक्त कारणों से अनर्थक नहीं कहे जा सकते हैं, जिसे अब आचार्य यास्क समाधान के रूप में यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

मूल- **अर्थवन्तः शब्द सामान्यात्**

हिन्दी- मन्त्रों के अर्थ होते हैं, क्योंकि लोक एवं वेद में समान रूप से शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे गो आदि शब्द लोक में अर्थवान है, वही गो आदि शब्द वेद में अर्थ रहित कैसे हो सकते हैं, अतः लोक एवं वेद के शब्द समान होने के कारण मन्त्र अर्थवान कहे जा सकते हैं।

विशेष- अब लौकिक उदाहरण के उपस्थापन के उपरान्त वैदिक उदाहरण के लिए ब्राह्मणवचन प्रस्तुत करते हैं।

मूल- **'एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म-क्रियमाणमृग्यजुर्वाभिवदतीति च ब्राह्मणम्'**

हिन्दी- ब्राह्मण वचन भी वेदमन्त्रों के सार्थक होने का समर्थन करते हैं, उन्हें अर्थवान् समझकर ही

भिन्न-भिन्न श्रौतकर्मों में द्रव्य-देवता-क्रिया के स्मारक के रूप में उनका विधान-विनियोग किया जाता है। मन्त्रों के अर्थवान् होने के सम्बन्ध में ब्राह्मण वचन से यह स्पष्ट होता है कि 'यज्ञ की समृद्धि वही है। जो यज्ञ के स्वरूप को समृद्ध करे, यज्ञ का स्वरूप द्रव्य-देवता-त्याग के रूप में माना गया है, इसी द्रव्य-देवता-त्याग क्रिया या स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा कराया जाता है, अतः मन्त्र सार्थक कहे जा सकते हैं।

मूल- ''क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः'' इति।

हिन्दी- मन्त्रों के स्वरूप समृद्धि को प्रमाणित करने के लिये आचार्य यास्क मन्त्र के एक अंश को उद्धृत करते हैं परन्तु यहाँ पुरा मन्त्र उदाहरणीय एवं व्याख्येय है, ''इहैव स्तं या वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतं। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वेगृहे'' (ऋ. 8/3/28/12) सोम के साथ सूर्या के विवाह के अवसर, यह मन्त्र विनियुक्त है, मन्त्र में परमेष्ठी ऋषि के द्वारा सोम-सूर्या (पति-पत्नी) को आशीर्वाद दिया गया है, कि तुम दोनों पति-पत्नी के रूप में यहीं अपने घर में रहो, कभी भी एक दूसरे से पृथक मत होवो, अपने पुत्र पौत्रों के साथ खेलते तथा सदैव प्रसन्न रहते हुए जीवन का समग्र आयु प्राप्त करो।

विशेष- पूर्ण आशीर्वाद से भरा हुआ उपर्युक्त समग्र मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है, जिसे कथमपि अनर्थक नहीं कहा जा सकता है, अब आचार्य यास्क सामान्येन मन्त्रों की सार्थकता प्रमाणित करने के उपरान्त कौत्स के आक्षेपों का क्रमशः खण्डन करते हैं।

मूल- यथो एतन्नियतयाच्यो युक्तयो नियतानुपूर्व्याः भवन्तीति, लौकिकेष्वप्येतद्। यथा इन्द्राग्नी पिता पुत्राविति।

हिन्दी- यह जो पूर्व में कहा गया था कि मन्त्र नियत - पाद योजना वाले तथा नियत पदक्रम वाले होते हैं अतः निरर्थक हैं यहाँ उसका यह समाधान किया जाता है कि केवल नियत पदयोजना तथा नियत क्रम के कारण कोई पद अथवा वाक्य निरर्थक नहीं हो जाता है क्योंकि लोक में भी नियतानुपूर्वीक पद देखे जाते हैं जैसे - इन्द्राग्नी, तथा पिता पुत्रौ। लोक में कहीं भी अग्नीन्द्रौ, पुत्रपितरौ प्रयोग नहीं देखा जाता हैं। अतः नियत पद प्रयोग के कारण मन्त्रों को अनर्थक नहीं कहा जा सकता है।

मूल- यथो एतद्ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना विधीयन्ते इति उदितानुवादः स भवति।

हिन्दी- यह जो दूसरा आक्षेप किया गया था, कि मन्त्र यदि अर्थवान् होते, तो उनके अर्थों के प्रतिपादन हेतु ब्राह्मण वाक्यों के द्वारा पुनः विधान नहीं किया जाता। इसका यह समाधान दिया जाता है कि यह तो उत्पानुवाद मात्र है, अपूर्व विधान नहीं है, अपूर्वता तो मन्त्रार्थ में ही है, इससे मन्त्र और ब्राह्मण दोनों अर्थवान् प्रमाणित होते हैं, मन्त्र स्वयं अपने आपको कर्म में विनियुक्त नहीं करता है तो ब्राह्मण वाक्य मन्त्रार्थानुरोध से उक्तानुवाद द्वारा मन्त्र कर्म में विनोयोग करा देता है।

मूल- यथो एतदनुपपन्नार्था भवन्तीत्याम्नाय वचनादहिंसा प्रतीयेत।

हिन्दी- पहले यह जो शङ्का की गयी थी, कि कुछ मन्त्रों के अर्थ असंगत होते हैं, तथा उदाहरण के रूप में - ''ओषधे त्रायस्व, स्वधिते मैनं हिंसीः'' उद्धृत किया गया था, उसका समाधान यह दिया जाता है कि मन्त्रगत ओषधि शब्द से ओषध्याभिमानी देवता से त्राण की कामना की गयी है, जो कि उचित ही है। दूसरे मन्त्र में हिंसा की निवृत्ति की प्रार्थना की गयी है, क्योंकि वेदविहित होने के कारण केशकर्त्तनादि में भी अहिंसा ही समझनी चाहिए।

मूल- **यथो एतद् विप्रतिषिद्धार्था भवन्ति, इति लौकिकेष्वप्येतद्। यथा असपत्नोऽयं ब्राह्मणोऽनमित्रो राजेति।**

हिन्दी- पहले यह जो कहा गया था, कि मन्त्र परस्पर विरुद्ध अर्थवाले होते हैं, अतः निरर्थक हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि लौकिक वाक्यों में भी इसी प्रकार परस्पर विरुद्ध अर्थ देखे जाते हैं, फिर भी वे अनर्थक नहीं माने जाते हैं। उदाहरण में यह जो बताया गया था कि एक ही रुद्र उत्पन्न हुआ, पुनः दूसरे मन्त्र में असंख्य रुद्रो की उत्पत्ति बतलायी गयी, इसको विरुद्ध अर्थ नहीं समझना चाहिए, क्योंकि देवता एक होते हुए भी अपनी शक्ति से अनेक होने का सामर्थ्य रखते हैं, श्रुति भी "इन्द्रो मायाभिः पुरुरुप इयते" इत्यादि मन्त्रों द्वारा उक्त तथ्य को प्रमाणित करती है, इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में इन्द्र को अजात शत्रु कहकर पुनः इन्द्र के द्वारा हजारों शत्रुओं की सेनाओं को जीतने की बात कही गयी है, जो परस्पर विरुद्ध है, सो इसका समाधान यह है कि लोक में इसी प्रकार के प्रयोग देखे जाते हैं, जैसे असपत्नोऽयं ब्राह्मणः यह ब्राह्मण अजातशत्रु है। शत्रुओं की अल्पता में वाक्य का तात्पर्य है सर्वथा अभाव में नहीं। इसी प्रकार 'अनमित्रो राजा' वाक्य से राजा को बिना मित्र वाला बतलाया गया है, परन्तु इसका तात्पर्य है, अल्प मित्र तथा अधिक शत्रु वाला राजा होता है क्योंकि मित्र-शत्रु और उदासीन सभी के होते हैं यह बात स्मृति ग्रन्थों में कही गयी हैं। जैसे-

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीन धमवः।।

मूल- **यथो एतज्जानन्तं सम्प्रेष्यनीति। जानन्तमभिवादयते, जानते मधुपर्क प्राहेति।**

हिन्दी- यह जो कहा गया था, कि मन्त्र में 'अग्रीत्' नामक ऋत्विक् को अग्नि विहरण के लिये प्रैष (आज्ञा) दिया जाता है जबकि वह पहले से ही अपना कर्त्तव्य जानता है, अतः जानने वाले को प्रैष देना निरर्थक हैं, सो ठीक नहीं है क्योंकि लोक में भी गुरू, अपने शिष्य का नाम गोत्र आदि यद्यपि जानता है फिर भी शिष्य गुरु को प्रणाम करते समय अपना नाम एवं गोत्र का उच्चारण करता है, इसी प्रकार विवाह के समय वर (दूल्हा) यह देखता है कि यह मधुपर्क = मिष्ठान्न है, जो मुझे खाने के लिए दिया जा रहा है, फिर भी देते समय 'मधुवर्को मधुर्षकः" ऐसा तीन बार कहा जाता है इसे निरर्थक नहीं माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञात के प्रति प्रैष भी निरर्थक नहीं कहा जा सकता है।

मूल- **यथो एतददितिः सर्वामिति, लौकिकेष्येतद्। यथा सर्वरसा अनुप्राप्ता पानीयमिति।**

हिन्दी- पहले यह जो कहा था कि अदितिः ही सब कुछ है ऐसा मन्त्र में कहा जाता है, जो ठीक नहीं है, इसका समाधान यह दिया जाता है कि लोक में भी श्रद्धा तिशय से किसी देवता को भी 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' आदि के द्वारा माता पिता कहा जाता है, जल में सभी रसों की प्राप्ति बतलायी जाती हैं। इससे वाक्य अनर्थक नहीं हो जाते हैं, अतिशय आदर का भाव वहाँ अन्तर्हित रहता है।

मूल- **अथो एतद्विस्पष्टार्था भवन्तीति। नैषस्थाणोपराधो यदेनमन्धो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति। यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुष-विशेषो भवति। पारोवर्यवित्सुतु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।**

हिन्दी- पूर्व में अम्यक्, जारयायि, काणुका इत्यादि मन्त्रों को उदाहृत कर यह जो कहा गया था, कि इन मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट नहीं है सो ठीक नहीं है, क्योंकि पशु को बांधने के लिये गाड़े गये खूंटे से कोई अन्धा टकराकर गिर जाता है तो यहाँ उस खूंटे का कोई अपराध नहीं होता है, गिरने वाले पुरुष अन्धेपन का अपराध (दोष) माना जाता है, उसी प्रकार निगम-निरुक्त आदि को अच्छी तरह न जानने वाला पुरुष यदि कतिपय मन्त्रों का अर्थ नहीं जानता, तो इसमें मन्त्र का कोई दोष नहीं होता है, अपितु निरुक्तादि मन्त्रार्थ बोधक शास्त्रों से अपरिचित होना ही दोष है, जनपदीय कार्यों में अपनी विद्या की कुशतलता से ही पुरुष जाना जाता है, शास्त्र के जानने वाले विद्वानों में भी बहुज्ञ एवं बहुश्रुत विद्वान् ही प्रशंसनीय होता है, क्योंकि वह अपनी बहुज्ञता से अविस्पष्ट अर्थवाले मन्त्र की भी व्याख्या अतीव सरलता से कर देता है, उसे किसी भी मन्त्र में कठिनता इसलिये नहीं होता, क्योंकि वह शास्त्रीय चक्षुष्मान होता है, लोक में अचक्षुष्मान् (अंधा) ही खूंटे से टकराकर गिरता है तथा दोष खूंटे को देता है, इसीलिए आचार्य यास्क ने लैकिक न्याय को उदहृत किया है।

नैष स्थाणोरपराधः यदेनमाधोन पश्यति, पुरुषापराधः स भवतीति।

इति पञ्चमः पादः

8.4.6 बोध प्रश्नोत्तर

प्र0 निरुक्त में कितने शब्दों का निर्वचन किया गया है?

उ0 निरुक्त में चार प्रकार के पदों का निर्वचन बताया गया है। जिन्हें नाम, आख्यात्, उपसर्ग, निपात कहा गया है।

प्र0 नाम किसे कहते हैं, तथा आख्यात का लक्षण क्या है?

उ0 सामान्यतः सुबन्त पदों को नाम कहा जाता है, जिसमें सत्त्व की प्रधानता होती है, सत्व-लिङ्ग, संख्या से युक्त द्रव्य को कहते हैं, आख्यात् का लक्षण - 'भाव प्रधानमा ख्यात्म्' किया गया है। भाव-व्यापार और क्रिया को कहा जाता है।

प्र0 भाव विकार कितने और कौन होते हैं?

उ0 भाव विकास छः बतलाये गये हैं, जिनके नाम हैं जायते, अस्ति,विपरिणमते, बर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यति।

प्र0 निरुक्त में किस आचार्य ने शब्द को अनित्य बतलाया है?

उ0 आचार्य औदुम्परायण ने शब्द को अनित्य बतलाया है।

प्र0 किस के मत में 'उपसर्ग' वाचक अथवा द्योतक माने जाते हैं?

उ0 आचार्य शाकटायन के मत में उपसर्ग द्योतक, तथा आचार्य गार्ग्य के मत में वाचक माने जाते हैं।

प्र0 निपात कितने प्रकार के बतलाये गये हैं?

उ0 निपात तीन प्रकार के बतलाये गये हैं, (1) उपमार्थक निपात (2) कर्मोपसग्रहात्मक निपात

(3) पद पूरणार्थक निपात।

प्र0 नामों को कौन आचार्य आख्यातज मानते हैं?

उ0 आचार्य शाकटायन तथा निरुक्तकार सभी नाम पदों को आख्यातज मानते हैं, जबकि आचार्य गार्ग्य तथा कुछ वैयाकरण कतिपय नामों को ही आख्यातज मानते हैं सभी को नहीं।

प्र0 मन्त्रों का अर्थनहीं होता है, यह किस आचार्य का मत है?

उ0 आचार्य कौत्स के अनुसार मन्त्रों में अर्थ नहीं होता है उनका मत है, कि मन्त्र केवल उच्चारणीय होते हैं अर्थवान् नहीं।

प्र0 उपमार्थक निपात कितने प्रकार के बतलाये गये हैं?

उ0 निपातों में इव, न, चित्, नू ये चार निपात उपमार्थक बतलाये गये हैं।

प्र0 'न' निपात के उपमार्थक एवं निषेधार्थक होने के भेद क्या हैं?

उ0 निषेधार्थक निपात 'न' सदैव पाद के प्रारम्भ में प्रयुक्त होता है, जबकि उपमार्थक निपात 'न' सदैव वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होता है।

प्र0 निपातों का प्रतिपादन निरुक्त के किस पाद में किया गया है?

उ0 निरुक्त के प्रथम अध्याय के द्वितीय एवं तृतीय पादों में निपात का विस्तार से विवेचन किया गया है।

प्र0 पञ्चम पाद का प्रतिपाद्य विषय क्या है।

उ0 पञ्चम पाद में मन्त्रों के सार्थक होने का प्रामाण्य पूर्वोत्तर पक्षों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

इकाई -9 : केनोपनिषद् - व्याख्या एवं बोध प्रश्न

इकाई की रूपरेखा

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. इकाई की परिधि
4. इकाई में नियत विषय का व्याख्यान
5. बोध प्रश्नोत्तर

9.1 उद्देश्य

स्नातकोत्तर कक्षा के विद्यार्थी के लिए समग्र संस्कृत साहित्य का बोध होना आवश्यक माना जाता है, परन्तु थोड़े समय में सम्पूर्ण साहित्य का यथातथ्य बोध करा पाना कठिन एवं अत्यधिक श्रमसाध्य है, इसीलिए द्वितीय इकाई में वेदाङ्गों का प्रतिनिधि ग्रन्थ 'निरुक्त' का परिचय प्रथम अध्याय के विषयों के प्रतिपादन से कराया गया, अब तृतीय इकाई में उपनिषद् साहित्य के सर्वमान्य ग्रन्थ 'केनोपनिषद' से परिचित कराया जायगा।

9.2 प्रस्तावना

उपनिषद् ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य जीव-जगत् तथा ब्रह्म का निरुपण करना है, परन्तु केनोपनिषद में साक्षात् ब्रह्मविद्या स्वयं उपस्थित होकर देवताओं के अभिमान को नष्ट कर देती है, ब्रह्मविद्या वस्तुत: उपनिषद् विद्या है, वहीं उपनिषदों का परम प्रतिपाद्य है, अत: स्नातकोत्तर कक्षा के विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप 'केनोपनिषद' का परिज्ञान इस इकाई में कराया जायगा। अन्य उपनिषदों में जहाँ सृष्टि विद्या आदि के माध्यम से परमतत्त्व का निरुपण किया गया है वहीं केनोपनिषद् में गुरुशिष्य संवाद के माध्यम से सृष्टि के गुह्यातिगुह्य रहस्यों को साक्षात् ब्रह्म विद्या के द्वारा समझाया गया है, अत: अन्य उपनिषदों की अपेक्षा इसका अधिक महत्त्व माना जाता है।

9.3 इकाई की परिधि

इस तृतीय इकाई में पाठ्यक्रम के रूप में सम्पूर्ण 'केनोपनिषद' रखा गया है, जिसमें कुल चार खण्ड हैं, खण्डों के अन्तर्गत पद्यात्मक एवं गद्यात्मक वाक्य प्राप्त होते हैं, मूलरूप में उनका उपस्थापन कर सरल तथा सुबोध हिन्दी भाषा के माध्यम से उनका तात्पर्य निरूपण करना ही इस इकाई की परिधि है।

9.4 नियत पाद व्याख्या

9.4.1 केनोपनिषद का व्याख्यान

अथ प्रथमः खण्डः

मूल - ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः। केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः। केनेषितां वाच मियां वदन्ति, चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ 1 ॥

हिन्दी- यह मन किससे प्रेरित हुआ अपने अभीष्ट विषयों के प्रति जाता है, किससे प्रयुक्त होकर यह प्रमुख प्राण चलता है। सभी प्राणी किसके द्वारा प्रेरित होकर इस अभीष्ट वाणी को बोलते हैं, और कौन देव चक्षु एवं श्रोत को प्रेरित करता है ।। 1।।

विशेष- केनोपनिषद् वस्तुतः सामवेदीय तवल्कार शाखा का नवम् अध्याय है, इसके पूर्व में वैदिक कर्मों का प्रतिपादन किया गया है, अब निष्काम पुरुष के विशुद्ध अन्तः करण में अनित्य पदार्थों से वैराग्य हो जाने के उपरान्त नित्य शुद्ध बुद्ध प्रत्यगात्मा के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जिसको 'केनेषितम्' इत्यादि प्रश्नोत्तर रूपा श्रुति के द्वारा इस उपनिषद में दिखलाया गया है।

मूल - श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मन यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः। अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकदमृता भवन्ति ॥ 2 ॥

हिन्दी- जो श्रोत्र का श्रोत्र, मनका मन, तथा वाणी की वाणी है, वही प्राण का प्राण, तथा चक्षु का चक्षु है, अर्थात् श्रोत्रादि में श्रवणादि का सामर्थ्य जिससे प्राप्त होता है, उसे जानकर धीर पुरुष वर्तमान शरीर त्याग के अनन्तर अमृत-अमर हो जाते हैं ।। 2 ।।

मूल- न तत्र चक्षुर्गच्छति न वागाच्छति नो मनोन विद्मो न विजानीमो, यथैतद् अनुशिस्याद् अन्यदेव, तद् विदितात् अथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये मस्तद् व्याचचक्षिरे ॥ 3 ॥

हिन्दी- जो श्रोत्रादि का प्रेरक सर्वाधिष्ठान पर ब्रह्म है उसमें नेत्रादि इन्द्रियां नहीं जा सकती है, मन भी वहाँ नहीं पहुँच सकता है। अतः जिज्ञासु शिष्य को उस निरुपाधिक ब्रह्म का उपदेश कैसे करना चाहिए यह बात हम नहीं जान सकते हैं क्योंकि उस ब्रह्म के विषय में हम स्वयं नहीं जानते हैं, वह तो विदित वस्तु से अन्य ही है, तथा अविदित (अज्ञान) से भी परे है, ऐसा हमने अपने पूर्व पुरुषों से सुना है जिन्होंने हमारे प्रति इसी रूप में उस निरुपाधिक चैतन्त ब्रह्म का व्याख्यान किया था।। 3 ।।

मूल- यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 4॥

हिन्दी- जो परब्रह्म वाणी से प्रकाशित नहीं होता है, परन्तु जो वाणी को प्रकाशित करता है, उसी को तुम ब्रह्म जानों, क्योंकि देशकाल से परिच्छिन्न जिस वस्तु की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।। 4 ।।

विशेष- उपनिषद् के तात्पर्य को प्रश्नोत्तर रूप से दर्शाया गया है, जिसमें श्रोणिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास पहुँच कर शिष्य द्वारा अपनी प्रत्यागात्मक विषयक जिज्ञासा का उपस्थापन तथा तदुपरान्त आचार्य द्वारा समाधान बतलाया गया है, गुरु एवं शिष्य के इस श्रुति संवाद में

लौकिक प्रष्टा एवं वक्ता की कल्पना कर लेनी चाहिए।

मूल - यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमत्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 5 ॥

हिन्दी- जिसे कोई भी मन से मनन नहीं कर सकता है, परन्तु जो मन का भी मनन कर सकता है, उसी को तुम ब्रह्म जानो, देश काल से परिच्छिन्न जिस वस्तु की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

मूल- यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 6 ॥

हिन्दी- जिसे नेत्र के द्वारा नहीं देखा जा सकता है, परन्तु जो अनेकानेक नेत्रों को देख सकता है, उसी को तुम ब्रह्म जानो, देशकाल से परिच्छिन्न जिस वस्तु की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

मूल- यच्छोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 7 ॥

हिन्दी- जिसे श्रोत्र के द्वारा नहीं सुना जा सकता है, परन्तु जो श्रोत को भी सुन सकता है, उसी को तुम ब्रह्म जानों , देशकाल से परिच्छिन जिस वस्तु की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नही है।

मूल- यत्प्राणेन प्राणिती येन प्राणीः प्रीणयते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ 8 ॥

हिन्दी- जिसे कोई नासिकाछिद्र के द्वारा प्राणन् = श्वसन का विषय नहीं बना सकता है, परन्तु जिस आत्म चैतन्य के द्वारा नासिका छिड्रवर्ती घ्राण प्राणम्-श्वसन् क्रिया में समर्थ होता है, उसी को तुम ब्रह्म जानो देशकाल से परिच्छिन्न जिस वस्तु की लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।''

विशेष- इस खण्ड में इन्द्रियों के स्थान श्रोत्र-नेत्र, घ्राण आदि के द्वारा विषयों के ग्रहण कर सकने में जिस अन्तश्चेतना का योग दान प्राप्त होता है, उसी प्रत्यगात्मचैतन्य को ब्रह्म शब्द से व्यवहृत किया गया है, गूंगे अथवा बधिर को मुख एवं श्रोत रहने पर भी बोलने अथवा सुनने का सामर्थ्य नहीं होता है, क्योंकि उन इन्द्रियों को अन्तश्चेतना की प्रेरणा प्राप्त नहीं होती है।

इति प्रथमः खण्डः

9.4.2 अथ द्वितीय : खण्डः

मूल- यदि मन्य से सुवेदेति दरहमेवापि नूनम्। त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथनु मीमांस्यमेव ते मन्त्र विदितम् ॥ 1 ॥

हिन्दी- यदि कदाचित् ऐसा मानते हो, कि ब्रह्म को मैं अच्छी तरह जानता हूँ तो निश्चय ही तुम ब्रह्म के स्वरूप को थोड़ा ही जानते हो, इस ब्रह्म का जो मनुष्यों में आध्यात्मिक और देवताओं में आधिदैविक रूप विदित है, वह अत्यल्प ही है, अतः तेरे लिये ब्रह्म अभी विचारणीय ही है। इस प्रकार गुरू का उपदेश सुनकर शिष्य ने एकान्त देश में पुनः ब्रह्म का विचार

किया, तत्पश्चात् उसने कहा कि अब मैंने ब्रह्म को अच्छी तरह जान लिया, ऐसा मैं समझना हूँ ।। 11 ।।

मूल- **नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।**

यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।। 2 ।।

हिन्दी- ब्रह्म को अच्छी तरह जान लिया, ऐसा भी मैं नहीं मानता हूँ और मैं उसे नहीं जानता हूँ, ऐसा भी मैं नहीं समझता हूँ, अतः ब्रह्म को मैं जानता हूँ और नहीं भी जानता हूँ। हम शिष्यों में से जो कोई ऐसा कहता है कि "मैं तो ब्रह्म को जानता हूँ और वस्तुतः नहीं भी जानता हूँ" वही वस्तुतः ब्रह्म को जानता है।। 2 ।।

मूल- **यस्यामतं तस्यमतं मतं यस्य न वेद सः।**

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।। 3 ।।

हिन्दी- जिस ब्रह्मवेत्ता को, ब्रह्म अविदित है, उसी को वस्तुतः विदित है, ऐसा समझना चाहिए,और जिसे ब्रह्म विदित है, वह वस्तुत उसे नहीं जानता, क्योंकि वह ब्रह्म जानने वालों को अविज्ञात रहता है, और न जानने वालों को ज्ञात होता है, अर्थात् अन्य वस्तु की भाँति फलव्याप्ति का विषय न होने से और ब्रह्माकार वृत्ति का भी साक्षी होने से ऐसा कहा गया है, अतः विद्वानों की दृष्टि में स्वयं प्रकाश वह सदा अविषय ही माना गया है।

मूल- **प्रतिबोध विदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते।**

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।। 4 ।।

हिन्दी- जो प्रत्येक बोध में प्रत्यगात्मा के रूप से विदित है, वही ब्रह्म है और यही उस ब्रह्म का ज्ञान है, ऐसे ब्रह्म ज्ञान से ही अमृतत्व को प्राप्त करता है, अमरत्व नित्य आत्म स्वरूप से ही प्राप्त होता है, ब्रह्माकार वृत्तिरूप से तो आवरण निवृत्त करने का सामर्थ्य मात्र मिलता है अर्थात् विद्या से आवरण की निवृति होने पर अमरत्व नित्य चैतन्य आत्म स्वरूप से ही मिलना है अन्य से नहीं ।। 4 ।।

मूल- **इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्या स्माल्लोकादमृता भवन्ति ।। 5 ।।**

हिन्दी- यदि इस मनुष्य जन्म में ब्रह्म को जान लिया, तब तो ठीक है, और यदि उसे इस मनुष्य जन्म में रहते रहते नहीं जान सका तो, समझो बहुत बड़ी क्षति हो गयी। अतः बुद्धिमान पुरुष समस्त प्राणियों में उस ब्रह्म तत्व को प्रत्यक्ष अनुभव करके इस लोक से वर्तमान शरीर त्याग के अनन्तर अद्वैतभाव रूप से क्षमा हो जाते हैं, अर्थात् - ब्रह्म ही हो जाते हैं।

इति द्वितीयः खण्ड :

9.4.3 अथ तृतीयः खण्डः

मूल- **ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणे-विजये देवा अमहीयन्त। त ऐक्षन्तास्माक-मेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।। 1 ।।**

हिन्दी- यह प्रसिद्ध है कि पूर्वोक्त ब्रह्म ने देवासुर संग्राम में देवताओं के लिये असुरों को जीता। उसी ब्रह्म की विजय में देवता गण महिमान्वित हुये, देवतागण इस सच्चाई को भूलकर अपनी

विजय बतलाने लगे, यह विचार आते ही वे कहने लगे, हमने असुरो को जीत लिया, यह विजय हमारी है, और यह महिमा -(सामर्थ्य) भी हमारी है।। 1 ।।

मूल- तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्योह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥ 2 ॥

हिन्दी- देवताओं के इस मिथ्या अभिमान को इस ब्रह्म ने जान लिया, और वह देवताओं के सामने अपने योग माहात्म्य से यक्ष रूप में प्रकट हुआ, तब देवता लोग, उसे न जान सके कि यह यक्ष कौन है।

मूल– ते अग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि कि मेतद्यक्षमिति तथेति ॥ 3 ॥

हिन्दी- उन देवताओं ने अग्नि से कहा-हे जातवेद । इसे जाकर पता लगावो, कि यह यक्ष कौन है? अग्नि ने कहा - अच्छी बात है, मैं जाकर पता लगाता हूँ।। 3 ।।

मूल- तदभ्यद्रवत तमभ्यवदत् को ऽसीति आग्निर्वा अहमास्मि इत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ 4 ॥

हिन्दी- अग्नि, उस यक्ष के पास पहुँच गया, कुछ पूछने की इच्छा से आये हुये उस अग्नि से यक्ष ने पूछा- तू कौन है? उसने कहा मैं अग्नि हूँ मेरा नामजातवेदा है।

मूल- तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ 5 ॥

हिन्दी- पुनः उस यक्ष ने अग्नि से पूछा, यदि तुम जातवेदा अग्नि हो, तो तुम्हारे में क्या सामर्थ्य है? अग्नि ने कहा कि पृथिवी में जो कुछ यह स्थावर जङ्गमादि पदार्थ है, उन सभी को मैं जला सकता हूँ।। 5 ।।

मूल- तस्मै तृणं निदधावेतद् दह इति, तदुप-प्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशांक दग्धुं, सतत एवं निववृत्ते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥ 6 ॥

हिन्दी- तब यक्ष ने उस अग्नि के लिये तिनका रख दिया, और कहा, इस जलाओ, अग्नि उस तृण के पास गया, और अपने सम्पूर्ण वेग से उस तिनके को जलाना चाहा, परन्तु उसे जला न सका, वह बिना कुछ कहे लज्जित होकर उस यक्ष के पास से लौट आया, और देवताओं के समक्ष कहा, कि मैं यह नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है? ।। 6 ।।

मूल - अथ वायुमब्रुवन वायवे तद्विजानीहिकिमेतद् यक्षमिति तथेति ॥ 7 ॥

हिन्दी- तत्पश्चात् उन देवताओं ने वायु से कहा- हे वायो! तुम जाकर पता लगावो कि यह यक्ष कौन है? वायु ने भी कहा ठीक है मैं जाकर पता लगाता हूँ।

मूल- तदभ्यद्रवत तमभ्यवदत् कोऽसीति वायुर्वा अहमास्मि इत्यब्रवीन् मातरिश्वा वा अहमस्मीति।

हिन्दी- वायु देवता भी उस यक्ष के पास पहुँचा, यक्ष ने वायुदेवता से पूछा तुम कौन हो वायु ने उत्तर दिया मैं वायु देवता हूँ, मुझे मातरिश्वा के नाम से जाना जाता है।

मूल- तास्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ 9 ॥

हिन्दी- तब यक्ष ने पूछा, यदि तुम मात रिश्वा वायु हो तो, तुझमें क्या सामर्थ्य है? वायु ने कहा, पृथिवी में स्थावरङ्गमारि जो भी पदार्थ हैं, उन सभी को मैं ग्रहण कर सकता हूँ।

मूल- तस्मै तृणं निदधौ एतद् आदत्स्वेति, तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकं विज्ञातुं आदातं स तत एव निववृते नैतदशकं यदेतद्यक्षमिति ॥ 10 ॥

हिन्दी- तब उस यक्ष ने वायु के समक्ष भी वही तिनका रख दिया, और कहा कि इसे ग्रहण करो,

वायु उस तिनके के पास गया, पर अपने सारे वेग से भी वह उस तिनके को ग्रहण नहीं कर सका, तब वायु उसके पास से ही लौट आया और कहा, यह यक्ष कौन है, इसे मैं न जान सका।

मूल- अथेन्द्रमब्रुवन् मधवन्नेत द्विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत् तस्मातिरोदधे ॥ 11 ॥

हिन्दी- तत्पश्चात् देवताओं ने इन्द्र से कहा हे मधवन् यह यक्ष कौन है, अब इसका पता आप स्वयं लगाइये, तब इन्द्र बहुत अच्छा कहकर उस यक्ष के पास गये, परन्तु वह यक्ष इन्द्र के सामने से तिरोहित हो गया।

मूल- स तस्मिन्नेवाऽऽकाशे स्त्रियमाजगाम, बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति ॥ 12 ॥

हिन्दी- जिस आकाश में यक्ष अन्तर्धान हुआ था। उसी आकाश में एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री के पास वह इन्द्र आया, और स्वर्णभरण भूषिता अथवा हिमालयतनया रूप उमा से पूछा, यह यक्ष कौन है ?

इति तृतीय खण्डः

9.4.4 अथ चतुर्थः खण्डः

मूल- सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति॥

हिन्दी- उस ब्रह्मविद्यारूप उमा ने इन्द्र से कहा-यह ब्रह्म है, तुम लोग ब्रह्म के ही विजय में इस प्रकार गौरव को प्राप्त किये हो, तब इन्द्र को यह ज्ञात हुआ कि यह यक्ष पूजनीय ब्रह्म है।

मूल- तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् [illegible] स्पृशुस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनप्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥ 2॥

हिन्दी- चूंकि अग्नि - वायु और इन्द्र इन तीन देवताओं ने ही संवादादि के द्वारा अत्यन्त समीपस्थ ब्रह्म का स्पर्श किया था, और उन्हीं तीनों ने सबसे पहले यह जाना कि यह यक्ष साक्षात् ब्रह्म है, अतः वे अन्य देवताओं की अपेक्षा ज्ञान-ऐश्वर्यादि में सबसे प्रमुख हो गये।

मूल- तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरा मिवान्यायन् देवान्स ह्यिनन्नेदिष्ठम् पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥ 3 ॥

हिन्दी- उन तीन देवताओं में भी इन्द्र इसलिये- देवाधिपति हो गये, क्योंकि उन्होनें ही समीपस्थ ब्रह्म का स्पर्श किया था, और उन्होंने ही सर्व प्रथम हैमवती उमा द्वारा ब्रह्म का परिचय प्राप्त किया था।

मूल- तस्मैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा 3इतीन्न्यमीमिषदा 3 इत्यधिदैवतम् ॥4॥

हिन्दी- उस ब्रह्म उपासना सम्बन्धी यह आदेश है जो बिजली की चमक के समान एवं पलक झपकने के समान प्रकट हुआ, यही उस ब्रह्म का अधिदैवतरूप है।

मूल- अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव न मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥ 5॥

हिन्दी- इसके बाद अब अध्यात्म उपासना का आदेश बतलाया जाता है, जो यह मन जाता हुआ सा कहा जाता है, वह ब्रह्म है, इसी प्रकार इस ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि मन

से ही ब्रह्म का स्मरण किया जाता है, और बार-बार मन के द्वारा ही उसके स्मरण का संकल्प किया जाता है।

मूल- तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ 6 ॥

हिन्दी- वही यह ब्रह्म बन है, अर्थात् वननीय = भजनीय है, अतः उस ब्रह्म की 'वन' नाम से उपासना करनी चाहिये। जो उसे इस प्रकार जानता है उस सभी प्राणी अच्छी तरह चाहने लगते हैं। ।। 6 ।।

मूल- उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ 7 ॥

हिन्दी- ब्रह्म निष्ठ गुरू के पास पहुँच कर शिष्य ने जब अपने गुरूजी से प्रार्थना की कि हे गुरूजी मुझे अब उपनिषद = ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिये, शिष्य के ऐसा कहने पर गुरूजी ने कहा, हमने मुझे उपनिषद् = ब्रह्मविद्या बतला दी है, अब उससे सम्बन्धित अन्य आवश्यक बाते तुझे बतलाते हैं।

मूल- तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा, वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ 8 ॥

हिन्दी- तप, दम, कर्म, और सम्पूर्ण वेद एवं उसके समस्त वेदाङ्ग उसी ब्राह्मनी उपनिषद् = ब्रह्मविद्या के प्राप्ति के साधन है तथा सत्यभाषण उसका आयतन = निवास स्थान है।। 8।।

मूल- यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतिष्ठिति प्रतिष्ठिति ॥ 9॥

हिन्दी- जो कोई निश्चय पूर्वक इस ब्राह्मनी उपनिषद् को उपर्युक्त रीति से जानता है, वह अपने समस्त पापों के ध्वंस कर अनन्त एवं महनीय स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है, पुनः संसार में जन्म नहीं लेता है।

इति चतुर्थ खण्डः

9.4.5 बोध प्रश्नोत्तर

प्र0 केनोपनिषद् किस वेद से सम्बद्ध है?

उ0 सामवेदीय तबल्कार शाखा के नवम् अध्याय को केनोपनिषद् कहा गया है, अतः इसका सम्बन्ध सामवेद से है।

प्र0 केनोपनिषद् के नामकरण में प्रवृत्ति निमित्त क्या है?

उ0 उपनिषद् का प्रथम मन्त्र 'केनोपनिषद् पतति0' से प्रारम्भ होता है, यह प्रथम पद उपनिषद् के नामकरण में प्रवृत्ति निमित्त बतलाया गया है।

प्र0 केनोपनिषद् में मुख्यतः किस विषय का प्रतिपादन किया गया है?

[illegible]निषद् में मुख्यतः ब्रह्म विद्या का उपदेश किया गया है।

[illegible]नोपनिषद् में कुल कितने मन्त्र, खण्ड, एवं आन्हिक हैं।

उ0 [illegible]नोपनिषद् में कुल 34 मन्त्र हैं, जिन्हें चार खण्डों में तथा तीन आन्हिक में विभक्त किया गया है।

प्र0 केनोपनिषद् का क्या कोई नामान्तर भी है?

उ0 केनोपनिषद् को तवल्कारोपनिषद् के नाम से भी जाना जाता है, अतः यही नामान्तर भी है।

प्र0 उपनिषद् साहित्य में 'केनोपनिषद्' का महत्व क्यों है?

उ0 महत्त्वपूर्ण उपनिषदों पर आद्य शङ्कराचार्य ने भाष्य लिखा है, केनोपनिषद् पर उन्होंने दो भाष्य लिखा है, जिसका नाम पदभाष्य तथा वाक्यभाष्य इसी कारण इस उपनिषद् का विशेष महत्त्व माना जाता है।

प्र0 केनोपनिषद् में यक्ष का प्रादुर्भाव किस खण्ड से होता है।

उ0 केनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में यक्ष का प्रादुर्भाव बतलाया गया है।

प्र0 केनोपनिषद् के किस खण्ड में हेमवत्ती उमा ने इन्द्र को उपदेश दिया है।

उ0 केनोपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में भगवती उमा ने इन्द्र को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है।

प्र0 केनोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मविद्या के साधन कौन-कौन हैं।

उ0 तप, दम, कर्म, सम्पूर्ण वेद एवं वेदाङ्ग उस ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के साधन बतलाये गये हैं।

----000-----

इकाई - 10 वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा -

(क) उद्देश्य

(ख) प्रस्तावना

(ग) इकाई की परिधि

(घ) नियत अंश का व्याख्यान

(ङ) बोध प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य वैदिक वाङमय के अन्तर्गत संहिता भाग तथा ब्राह्मण भाग से परिचित कराना है। इसके द्वारा आप वेद का सामान्य परिचय तथा वेद के चार मुख्य स्तम्भों (संहिता, ब्राह्मण,आरण्यक, उपनिषद्) में से प्रथम दो स्तम्भों का विस्तृत परिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

10.2 प्रस्तावना

तृतीय इकाई में प्रसिद्ध उपनिषद् "केनोपनिषद्" का व्याख्यान किया गया है, क्योंकि वह पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित है, परन्तु इस इकाई का पाठ्य विषय निर्धारित किये गये हैं, जो हैं,वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत मन्त्र संहिता तथा ब्राह्मण भाग का विशेष विवेचन । इसी नियत अंश का विस्तृत विवेचन इस इकाई में प्रस्तुत किया जायेगा।

10.3 इकाई की परिधि

इस इकाई में वैदिक विद्वानों द्वारा सुविचारित एवं गवेषित तथ्यों में मन्त्र संहिता एवं ब्राह्मणभाग के सन्दर्भों को रखा जायगा। वैदिक वाङ्मय के इन दो स्तम्भों की विवेचना के पहले सामान्य रूप से वेद का स्वरूप एवं उसके रचना आदि के विषय में प्रसिद्ध विचारकों का मन्तव्य दर्शाया जायेगा । यही इस इकाई की परिधि कही जायगी।

10.4 नियत अंश का व्याख्यान

इस इकाई में वेद का सामान्य स्वरूप तथा रचनादिकाल का निर्देश कर मन्त्र संहिता एवं ब्राह्मण भाग के विषय में विस्तृत विचार किया जाना निर्धारित है, अतः यथाक्रम उनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है ।

10.5 वेद का सामान्य परिचय

भारतीय मनीषियों ने मन्त्र ब्राह्मणात्मक अपौरूषेय शब्द राशि को 'वेद' शब्द से अभिहित किया है। उनके अनुसार वेद किसी पुरूष विशेष की वाणी नही, अपितु परमेश्वर का निश्वास् अर्थात

प्राण कहा जाता है, वेद शब्द के अर्थ के विषय में यद्यपि अनेक विचार प्राप्त होते हैं, फिर भी सर्वमान्य मत यही है कि वेद का अर्थ ज्ञान होता है, वह ज्ञान परमेश्वर का स्वरूप लक्षण है, "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"इस तैत्तिरीय श्रुति के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि जो ज्ञान सर्वदा नित्य, सत्य एवं अनन्त है वह ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर है, उस वेद-ज्ञान का बोध जिस शब्दराशि से साकल्येन प्राप्त होता है उसे भी वेद नाम से अभिहित किया जाता है।

10.5.1 वेद शब्द का अर्थ

वेद शब्द 'विद् ' धातु से करण तथा अधिकरण कारकों में 'घञ' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है, महर्षि पाणिनि के अनुसार 'विद् ' धातु का प्रयोग चार अर्थों में किया जाता है, जो कि इस प्रकार है - विद् ज्ञाने विद् सत्तायाम, विद्लृलाभे, विद् विचारणे,इन धातुओं में "हलश्चेति" सूत्र से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय का विधान किया गया है, जिससे 'वेद' शब्द बना है। ऋग्वेद प्रतिशाख्य की वर्गद्वय वृत्ति की प्रस्तावना में आचार्य विष्णु मित्र ने 'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलायी है, "विद्यते ज्ञायते, लभ्यते वैभिर्धर्मादि पुरूषार्थ इति वेदः" अर्थात् जिसके द्वारा धर्मादि चारों पुरूषार्थ प्राप्त किये जाते हैं, वह ज्ञान ही वेद शब्द वाच्य है, आचार्य सायण ने तैत्रिरीय भाष्य भूमिका में स्पष्ट कहा है कि "इस प्राप्त्यनिषपरि हास्योरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थोवेदयति न वेदः" अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा अनिष्ट वस्तु के परिहार हेतु अलौकिक उपाय बतलाता है, वह वेद है। मनुस्मृति कार धर्म ज्ञान के प्रामाण्य के रूप में वेद को स्वीकार करते हैं,तद्यथा - "धर्म" जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति" तैत्तिरीय संहिता में भी वेद के वेदत्व को इस प्रकार बतलाया गया है, "वेदेन वै देवाः असुरणां वित्तं वेद्यमविन्दत्त तद वेदस्य वेदत्वम् " अर्थात् वेद के द्वारा ही देवताओं ने असुरों की सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया, यही वेद का वेदत्व है।

वैदिक शास्त्रों में अन्तोदात्त 'वेद' शब्द का अर्थ कुशभुष्टि तथा आद्युदात्त वेद शब्द का अर्थ ज्ञान बतलाया गया है ज्ञान स्वरूप होते हुये भी वेद पारलौकिक आध्यात्म ज्ञान का साधन भी माना गया है, आचार्य सायव ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में इसी तथ्य को उद्भाषित किया है, तद्यथा-

प्रत्यक्षेणानुमित्यावा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माात् वेदस्य वेद्वता ।।

इस प्रकार भारतीय मनीषियों की चिन्तन परम्परा में वेद शब्द का अभिद्येय अर्थ ज्ञान अथवा ज्ञान प्राप्ति का अलौकिक उपाय है। सम्पूर्ण विश्व को इसी ज्ञानालोक से आलोकित करने का प्रथम श्रेय परमेश्वर रूप वेद को ही दिया गया है, वेदव्यास ने वेद को साक्षात नारायण का स्वरूप बतलाया है, तद्यथा

वेद प्रणिहितो धर्मः, हथधर्मस्तद् विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भुरिति शुश्रुमः ।।

10.5.2 वेद शब्द में नामान्तर

वेद शब्द के पर्यायवाची शब्दों में श्रुति, आम्नाय, त्रयी, छन्दस् , स्वाध्याय, आगम तथा निगम मुख्य है, इनके नाम वेद के तटस्थ लक्षण के अनुसार रखे गये हैं, जिनका थोड़ा विवेचन यहाँ अति प्रासंगिक होगा।

श्रुति - प्राचीन काल में गुरूमुख से सुनकर शिष्य गण वेदमन्त्रों को स्वर सहित उच्चारण करते थे, तथा उन्हें भी वेद कण्ठस्थ हो जाता था, पुनः वे अपने शिष्यों को पूर्व प्राप्त वेद शब्दों के उच्चारण को यथावत् ग्रहण कराते थे, इस प्रकार श्रवण परम्परा से प्राप्त होने के कारण वेद का एक नाम "श्रुति" भी पड़ गया है, जिसका शाब्दिक तात्पर्य यही है कि जो सुनकर ग्रहण किया गया है।

आम्नाय - आम्नाय पद 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'म्ना' अभ्यासे धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है, अभ्यास के द्वारा ग्रहण किया गया शब्दराशि, गुरूमुख से एक बार सुन लेने पर शिष्य के द्वारा बार बार अभ्यास के द्वारा कण्ठ किये जाने के कारण वेद को आम्नाय शब्द से कहा जाता है।

त्रयी ' 'त्रयी' शब्द भी वेद का समानार्थक है, क्योंकि इसमें ऋक् यजु साम तीनों प्रकार के मन्त्र संग्रहीत किये गये होते हैं पद्य, गद्य एवं गेय मन्त्रों का संकलन सभी वेदों में होने के कारण 'त्रयी' शब्द सामान्येन चारों वेदों का वाचक माना जाता है।

छन्दस् - वेद के पर्याय के रूप में 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है, महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'बहुलं छन्दसि' सूत्र का अनेकों बार प्रयोग किया, उनके अनुसार छन्दस् शब्द मन्त्र ब्राह्मण दोनों के लिये प्रयुक्त किया जाता है, निरूक्त कार यास्क ने 'छन्द् आच्छादने 'धातु से 'छन्दस् ' शब्द निष्पन्न माना है, उनके अनुसार प्रत्येक मन्त्र किसी दैवी अर्थ विशेष से आच्छादित रहता है अतः उन्हें छन्दस् ' कहा जाता है।

स्वाध्याय - स्वाध्यायोऽध्येतव्यः (तै. आ0 2/15)

स्वाध्यायान्माप्रमदः (तै. उप. 1/11/1) आदि वैदिक वाक्यों में स्वाध्याय शब्द का अर्थ वेद बतलाया गया है ।स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है जो अच्छी तरह अध्ययन करने योग्य हो, प्राचीन काल में वेद ही एकमात्र सभी द्विजातियों का स्वाध्याय था, जिसके नित्य अध्ययन करने का विधान था, वैदिक ग्रन्थों में वेद का नित्य अध्ययन 'ब्रह्म यज्ञ' के नाम से कहा गया है।

आगम - महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में -

"रक्षोहागमलध्वसन्देहा प्रयोजनम् " इस वाक्य में आगम शब्द का प्रयोग वेद के लिये किय है।सांख्यकारिका शब्द का प्रयोग वेद के लिये किया है।सांख्यकारिका की छठी कारिका में ग्रन्थकार ईश्वर कृष्ण ने "तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमात्पागमात्" के द्वारा भी मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद के लिये आगम शब्द का प्रयोग किया है, भारतीय सम्प्रदायों का उत्सस्थान वेद होने के कारण कालान्तर में सभी सम्प्रदाय के लोग अपने सम्प्रदाय के साथ आगम शब्द का प्रयोग करने लगे, जैसे तन्त्रागम, शैवागम, वैष्णवागम, शाक्तागम, बौद्धागम, जैनागम आदि ।

निगम - आगम के समान निगम शब्द भी प्रायः वेद के लिये सर्वत्र प्रयोग किया जाता है आचार्य यास्क ने निरूक्त में जितने उदाहरण वेदों से दिये है, उन सबके लिये प्रायः निगम शब्द का प्रयोग किया है, आगम एवं निगम दोनों ही पद रचना एवं अर्थ की दृष्टि से समान है, अन्तर मात्र आ एवं नि उपसर्गों का है, वेद का जो ज्ञान किसी देवता विशेष से आगत होता है, तो उसे आगम कहा जाता है, जो ज्ञान निश्चय रूप से परम्परा से प्राप्त होता है, उसे निगम कहा जाता है।

10.5.3 वेद का महत्त्व

वैदिक संहिताओं में वेद शब्द दो प्रकार से प्राप्त होते हैं, (1) अन्तोदात्त (2) आद्युदात्त वेद शब्द विदल् लाभे धातु से निष्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ धन, अथवा कुशमुष्टि किया जाता है। आधुदात्त वेद शब्द 'विद् ' ज्ञाने धातु से निष्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ ज्ञान किया जाता है। वैश्विक साहित्य में वेदों को सर्व प्राचीन ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है, यही समस्त ज्ञान विज्ञान का स्रोत माना गया है, भारतीय मान्यताके अनुसार 'वेद' शब्द किसी एक ग्रन्थ का वाचक न होकर सम्पूर्ण अलौकिक ज्ञान का वाचक है। वेद की प्रशंसा करते हुये मनु ने कहा है कि -

वेद शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रये वसन् ।
इहैवलोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। 12/102

'वेदों' के अध्ययन से ही हम अपने पूर्वजों के जीवन प्रणाली के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, सभी भारतीय दर्शनों का स्रोत वेदों में उपनिषद्ध है, उपनिषद साहित्य, वैदिक साहित्य का प्राण है जो सदैव परब्रह्म परमात्मा को अपना विवेच्य बनाकर विश्व का कल्याण कर रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेद विश्वज्ञान का भण्डार है। मानव सभ्यता का दर्पण है। भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है एवं भारतीयों का परम पूज्य ग्रन्थ रत्न है। इसीलिये इसे 'भगवान् वेदः' नाम से भी सम्मानित किया गया है। इसके महत्व का जितना वर्णन किया जाय, कम ही है।

10.5.4 वेद का विभाग

वेदों के मुख्यतः चार विभाग किये जाते हैं, (1) मन्त्र संहिता (2) ब्राह्मण भाग, (3) आरण्यक (4) उपनिषद् , जिस ग्रन्थ में मन्त्रों का संग्रह किया गया है उन्हें ही मन्त्र संहिता कहा जाता है, मन्त्र मुख्यतः ऋक् यजुः, साम के रूप मे तीन प्रकार के माने गये हैं सभी वेदों में यद्यपि ये तीनों प्रकार के मन्त्र संग्रहीत हैं, फिर भी बहुलता से इनका व्ययदेश किया जाता है। जैसे ऋग्वेद मन्त्र संहिता, यजुर्वेद मन्त्र संहिता, सामवेद मन्त्र संहिता तथा अथर्ववेद मन्त्र संहिता आदि ।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य के अनुसार पद है प्रंकृति जिसकी वह संहिता है अथवा पदों की प्रकृति संहिता इन दोनों व्याख्याओं के अनुसार इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि पदों की संहिति को ही संहिता कहते हैं,वाजसनेयि प्रातिशांख्य के अनुसार वेणी का एक श्वास में उच्चारण ही संहिता कहलाता है। यद्यपि पाणिनि के अनुसार वर्णों की अत्यधिक सन्निकटता की संज्ञा संहिता है।

सम्प्रति मन्त्र संहिता ग्रन्थों की संख्या चार मानी जाती है, जिस ग्रन्थ में विभिन्न ऋषियों द्वारा दृष्ट ऋक् मन्त्रों का संकलन किया गया है उसे ऋग्वेद मन्त्र संहिता कहा जाता है, तथा जिस ग्रन्थ में वैदिक यज्ञानष्ठानों में प्रयुक्त होने वाले यजुष मन्त्रों का संकलन किया गया है, उसे यजुर्वेद मन्त्र संहिता कहा जाता है इसी प्रकार जिस ग्रन्थ में वैदिक यागों के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले साम मन्त्रों का संकलन हुआ है, उसे सामवेद मन्त्र संहिता कहा जाता है । एवमेव जिस ग्रन्थ में लौकिक अनुष्ठानों शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन किया गया है, उसे अथर्ववेद मन्त्र संहिता कहा जाता है। ऋक् , यजुष् , साम की अधिकता के कारण उन उन संहिताओं का नाम ऋक संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता रखा गया, परन्तु अथर्ववेद संहिता का नामकरण उनके संकलन कर्ता अथर्वा एवं अंगिरा ऋषियों के नाम पर "अथर्वाङ्गिरस संहिता रखा गया, उसे ही अथर्ववेद संहिता कहा जाता है।

प्रत्येक वेद की अनेक शाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है, इससे यह अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल में वेद की जितनी शाखायें प्रसिद्ध थीं उतनी उनकी मन्त्र संहितायें भी अवश्य रही होंगी। जब तक वेद का अध्ययनाध्यापन केवल श्रवण परम्परा से होता रहा, तब तक उन्हें शाखा के नाम से जाना जाता रहा, परन्तु जब शाखायें लिपिबद्ध होने लगीं तब उनका नाम संहिता पड़ गया। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में वैदिक शाखाओं की संख्या का उल्लेख किया, उनके अनुसार ऋग्वेद की 21 शाखायें, यजुर्वेद की 101 शाखायें, सामवेद की 1000 शाखायें तथा अथर्ववेद की केवल 09 शाखायें उस समय प्रचलित थी।

सम्प्रति ऋग्वेद की शकल एवं वास्कल दो शाखायें, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी काठक, तथा कठ कपिष्ठल की चार शाखायें, शुक्ल यजुर्वेद की कण्व और माध्यन्दिन केवल दो

शाखायें, सामवेद की कौथुमी, राणायनी, जैमिनी केवल तीन शाखायें अथर्ववेद की शौनक एवं पिप्लाद केवल दो शाखायें प्राप्त होती हैं।

10.5.4.1 ब्राह्मण भाग

संहितागत मन्त्रों के व्याख्यापरक ग्रन्थ को ब्राह्मण ग्रन्थ कहा जाता है, ब्रह्म शब्द का अर्थ मन्त्र अथवा यज्ञ बतलाया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों की व्याख्या के साथ साथ यज्ञीय कर्मकाण्ड सम्पूर्ण विधि विधान प्राप्त होता है। स्थान-स्थान पर अनेक आख्यानों द्वारा विवेच्य विषय को अत्यन्त सरलता से समझाया गया है। सभी ब्राह्मण ग्रन्थ गद्यमय है। प्रत्येक संहिताओं के स्वतन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते थे, परन्तु आज किसी वेद की संहिता प्राप्त है तो उसका ब्राह्मण भाग अनुपलब्ध है, यदि ब्राह्मणभाग उपलब्ध होता है, तो संहिता भाग अनुपलब्ध है।

10.5.4.2 आरण्यक भाग

जिन ग्रन्थों का प्रणयन विभेद रूप से अरण्य में पढ़ने के लिये किया गया था, वे ही आरण्यक ग्रन्थ कहे गये, आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ न होकर उनके अन्तर्गत विद्यमान आध्यात्मिक तथा दार्शनिक तत्त्वों की मीमांसा है।

10.5.4.3 उपनिषद् भाग

उपनिषद् ब्रह्म विद्या का नाम है यह वह विद्या है जिसके अनुशीलन से मोक्षार्थी जनों के सांसारिक आवागमन के कारणभूत अविद्या का नाम हो जाता है, मुमुक्षुजन ब्रह्म के समीप पहुँच जाते हैं, तथा उनके जन्ममरण के बन्धन सदा-सदा के लिये शिथिल हो जाते हैं, आरण्यक तथा उपनिषद् दोनों को ब्राह्मण भाग का परिशिष्ट बतलाया गया है।

वेदों के उपर्युक्त चतुर्धा विभाजन का एक विशेष कारण यह बतलाया गया है कि प्राचीन काल में सम्पूर्ण मानव जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था, जिनके नाम हैं, (1) ब्रह्मचर्य (2) गृहस्थ, (3) वानप्रस्थ तथा (4) सन्यास। इनके लिये "शतायुर्वैपुरुष" के अनुसार मानव जीवन को 100 वर्ष की पूर्णायु मानकर प्रारम्भ की 25 वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य, उसके बाद 50 वर्ष की अवस्था तक गृहस्थ, तत्पश्चात् 75 वर्ष की अवस्था तक वानप्रस्थ तथा शेष 100 वर्ष की अवस्था तथा उससे भी अधिक परमेश्वर की कृपा से यावज्जीवन सन्यास आश्रम में रहने का विधान किया गया था। ब्रह्मचर्य अवस्था में मन्त्र सहिंताओं का अध्ययन एवं अभ्यास कर कण्ठस्थ कर लेना विहित था, गृहस्थाश्रम में ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन तथा उनके अनुसार यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने का विधान किया गया था, वानप्रस्थ में पुत्रों पर परिवार का भार सौंप कर अरण्य में जाकर आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययन तथा तदनुसार उपासनाओं के करने का विधान किया गया था, जीवन की अन्तिम अवस्था सन्यास ग्रहण कर आध्यात्मिक सुधा धारा का पान करने के लिये ब्रह्मनिष्ठ गुरू के समीप में उपनिष्दों का अध्ययन तथा तदनुसार चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करते हुए स्वयं तथा लोक का उपकार करने का विधान किया गया था।

10.5.4.4 मन्त्र संहितायें

(1) ऋग्वेद मन्त्र संहिता

'ऋग्वेद' में मन्त्रों का संकलन सूक्तों के द्वारा किया गया है, सूक्त का अर्थ है, एक ऋषि के द्वारा दृष्ट सुभाषित एवं उत्तम वचन, इसीलिये ऋग्वेद सूक्तों का वेद कहा जाता है। वैदिक साहित्य की समस्त रचनाओं में ऋग्वेद मन्त्र संहिता सार्वधिक प्राचीन, महत्त्वपूर्ण तथा मौलिक है, इसमें किसी भी विद्वान को किञ्चिन्मात्र आपत्ति नहीं है, छन्दोवृद्ध या पद्यात्मक मन्त्रों को ऋक् कहा गया है, सम्पूर्ण

संहिता छन्दोवद्ध ऋचाओं का संग्रह है। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में ऋग्वेद की एक्कीस शाखाओं का निर्देश किया है, किन्तु परवर्ती ग्रन्थों में केवल पांच शाखाओं का ही उल्लेख प्राप्त होता है, ये शाखायें हैं, शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, सांख्यायन और माण्डूकायन। किन्तु सम्प्रति पूर्णरूप से शाकल शाखा ही प्राप्त होती है, यही आजकल ऋग्वेद संहिता के रूप में प्रचलित है। इसी का विशेष वर्णन अगले पृष्ठों में दिया जाएगा। वाष्कल शाखा की यद्यपि कोई संहिता-उपलब्ध नहीं होती है, तथापि इसकी विशिष्टताओं का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। कुछ आचार्य शाकल संहिता के अष्टकक्रम विभाजन को ही वाष्कल संहिता मानते हैं, शाकल शाखा के अनुसार ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र है, "समानी व आकूतिः" ऋ. 10/191/4 परन्तु वाष्कल संहिता के अनुसार "6 तच्छंयोरावृणीमहे है" अन्तिम ऋचा है।

ऋक्परिशिष्ट

शाकल शाखा के अन्त में "ऋक्परिशिष्ट" के नाम से 36 सूक्त संग्रहीत किये गये हैं, जिनमें ऋचाओं की संख्या में एक रूपता नहीं है, किन्ही सूक्तों में तो केवल एक ही ऋचा उपलब्ध है, परन्तु किसी में 48 ऋचाओं की स्थिति है, इन सूक्तों में कतिपय नितान्त प्रख्यात तथा बहुधः चर्चित है, जैसे श्री सूक्त, रात्री सूक्त, मेघा सूक्त, शिव संकल्प सूक्त, तथा संज्ञान सूक्त।

ऋग्वेदीय शाकल संहिता में कुल 1017 सूक्त प्राप्त होते हैं, जिसमें वालखिल्य के 11 सूक्तों को मिला देने से कुल सूक्त की संख्या 1028 मानी जाती है, इसमें मन्त्रों की संख्या लौगाक्षिस्मृति के मन्त्रानुसार 105801/4 बताई गयी है। परन्तु कुछ विद्वान् लगभग 10600 ऋचायें मानते हैं। शाकल संहिता का विभाजन जो प्रकार से प्राप्त होता है, (1) अष्टक क्रम (2) मण्डल क्रम

अष्टक क्रम - सम्पूर्ण संहिता को आठ अष्टकों में विभक्त किया गया है, प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय किये गये हैं, इस प्रकार पूरी ऋग्वेद संहिता 64 अध्यायों में संकलित है, प्रत्येक अध्यायों के अवान्तर विभागों का नाम 'वर्ग' है जो सम्भवतः अध्ययन के सौकार्य के लिये किया गया है। 'वर्ग' ऋचायों के समुदाय की संज्ञा है, परन्तु वर्गों में ऋचाओं की संख्या निश्चित नहीं है, क्योंकि एक मन्त्र से लेकर नव मन्त्रों तक के वर्ग प्राप्त होते हैं इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ग की संख्या 2006 बतलायी गयी हैं।

मण्डल क्रम - दूसरा विभाग अत्यधिक महत्त्वशाली ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक माना जाता है, पूरी ऋक संहिता को 10 मण्डलों में विभक्त किया गया है, मण्डल के अन्तर्गत अनुवाक तथा अनुवाक के अन्तर्गत सूक्तों का विभाजन किया गया है। सूक्तों के अन्तर्गत मन्त्र अथवा ऋचायें समाम्नात हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद मन्त्र संहिता में 10 मण्डल , 85 अनुवाक, 1028 सूक्त तथा 10580 1/2 ऋचायें प्राप्त होती हैं।

ऋग्वेद की भाषा तथा विषयवस्तु के गम्भीर विवेचन के उपरान्त विद्वानों का यह मानना है कि ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से सातवें मण्डल तक के सूक्त अपेक्षाकृत प्राचीन हैं, जिन्हें 'वंशमण्डल' के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इन मण्डलों का सम्बन्ध किसी एक ऋषि विशेष से है, जैसे द्वितीय मण्डल के ऋषि गृत्समद, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पञ्चम के अत्रि, षष्ठ के भरद्वाज, सप्तम मण्डल के ऋषि वशिष्ठ हैं, अष्टम मण्डल समकालीन प्रतीत होता है, नवम मण्डल के ऋषियों द्वारा सोम देवता के स्तुतिपरक सूक्त संग्रहीत हैं, अतः सोम के पवमान कहे जाने के कारण पूरे नवम मण्डल पवमान मण्डल भी कहा जाता है। प्रथम एवं दशम मण्डल सर्वाधिक अर्वाचीन माने जाते हैं क्योंकि इन मण्डलों के सूक्तों में स्थान-स्थान पर अन्य मण्डलों के मन्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है,

भाषा की दृष्टि से भी-इन दोनों मण्डलों को अन्य मण्डलों की अपेक्षा अर्वाचीन सिद्ध किया गया है।

अष्टम मण्डल के अन्त में प्राप्त बालखिल्य सूक्तों को आधुनिक विद्वान् प्राचीनतम मानते हैं, परन्तु ये सूक्त संहिताओं में क्यों संकलित नहीं किये गये, यह विचारणीय है। डॉ. मङ्गलदेव शास्त्री ने ऋग्वेद संहिता के सूक्तों एवं मन्त्रों की संख्या मण्डलानुसार निर्दिष्ट की है जो इस प्रकार है ।

मण्डल	सूक्त संख्या	ऋक्संख्या	ऋषि
प्रथम	191	2006	विभिन्न
द्वितीय	43	429	गृत्समद
तृतीय	62	617	विश्वामित्र
चतुर्थ	58	589	वामदेव
पञ्चम	87	727	अत्रि
षष्ठ	75	765	भारद्वाज
सप्तम	104	841	वशिष्ठ
अष्टम	92	1636	विभिन्न
नवम	114	1108	सोमविषयक
दशम	191	1754	विभिन्न
	1017	10472	

10.5.5 ऋग्वेद का प्रतिपाद्य

सामान्यतः छन्दोंवद्ध मन्त्रों को ऋचा कहा जाता है। ऋग्वेद उन्हीं ऋचाओं का वेद कहा गया है। यद्यपि अन्य वेदों में भी ऋचाओं का संकलन है, फिर भी ऋग्वेद में केवल ऋचायें संकलित की गयी है, इन ऋचाओं से देवताओं की स्तुति की गयी है, स्तुतियों के बव्याज से ही धर्म, दर्शन, एवं संस्कृति के उदात्त विचार भी प्रकट किये गये हैं, इसके अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशाओं का भी परिज्ञान कराया गया है, इसी प्रकार ऋग्वेद में सृष्टिविद्या से सम्बन्धित दार्शनिक विचार, वैवाहिक रीति रिवाज, पशु-पक्षी-वृक्षों आदि से सम्बद्ध मन्त्र, संवाद सूक्त,आख्यान एवं दानस्तुतियाँ प्राप्त होती हैं।

ऋग्वेद में हिन्दू धर्म के सभी तत्त्व मूल रूप में विद्यमान हैं, ऋग्वेद वस्तुतः हिन्दू धर्म और दर्शन की आधार मिला है,भारतीय कला एवं विज्ञान के उदय का संकेत भी यहाँ पर प्राप्त होता है, इसी प्रकार विश्व सर्जक तत्त्वों की जिज्ञासा, उनका रूपकात्मकवर्णन, मानव जीवन की आकांक्षाओं, आदर्शों तथा मान्यताओं आदि पर ऋग्वेद के अध्ययन से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दार्शनिक तत्त्व-जीव, जगत, आत्मा, ब्रह्म, माया, कर्म, पुनर्जन्म आदि के स्रोत भी ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं, तथा वहाँ पर देवतावाद, बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद, अद्वैतवाद आदि दार्शनिक वादों का बीज भी दिखाई पड़ता है। दार्शनिक सूक्तों में नासदीय सूक्त , पुरूषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त, वाक्सूक्त, तथा अस्यवाकीय सूक्त प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ऋग्वेद भारतीयों की सामाजिक तथा आध्यात्मिक धारणाओं का परिचायक होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं नितान्त आदरणीय माना जाता है।

10.5.6 यजुर्वेदमन्त्र संहिता

अनियताक्षरावसानो यजुः, गद्यात्मकोयजुः इत्यादि वाक्यों द्वारा 'यजुष्' का लक्षण बतलाया गया है, इन्हीं यजुष मन्त्रों का संकलन यजुर्वेद कहा जाता है. यद्यपि ऋग्वेद में अनेकत्रीय गद्यात्मक

मन्त्रों का भी संकलन देखा जाता है, परन्तु वे सभी मन्त्र यजुर्वेदीय धर्म 'गद्यात्मक उच्चारण' से ही बोले जाते हैं, महर्षि पतञ्जलि ने 'एकशतमध्वर्युशाखा'' बतलाकर इसके 101 शाखाओं कानिर्देश किया है। इसमें भी कृष्ण यजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद दो प्रकार के विभाजन प्राप्त होते हैं। जिन्हें सामान्यतः तैत्तिरीय शाखा एवं वाजसनेयी शाखा के नाम से भी जाना जाता है।

कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद

वेद पहले एक ही थी, जब वेदव्यास ने अपने चार- शिष्यों को चारों वेदों को प्रदान किया, उस समय महर्षि वैशम्पायन को यजुर्वेद, पैल को ऋग्वेद, जैमिनि को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद प्राप्त हुआ। यजुर्वेद के पुनः कृष्ण शुक्ल दो विभाग होने के मूल में पुराणों का यह आख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार हैं वेदव्यास के शिष्य महर्षि वैशम्पायन ने अपने अनेक शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया, उनमें सबसे मेधावी शिष्य याज्ञवलक्य थे। वैशम्पायन के साथ एक कष्टप्रद घटना घटी, जिसके कारण प्रायश्चित्त स्वरूप कृच्छ व्रतोपवास हेतु अपने समस्त शिष्यों को वैशम्पायन ने आदेश दिया। याज्ञवलक्य ने अपने गुरू जी से निवेदन किया कि मैं अकेले आपके प्रायश्चित्त के लिये कृच्छव्रतोपवास कर सकता हूँ, अन्य दुर्बल शिष्यों को कृपया इस व्रत के लिए प्रेरित न करें, वैशम्पायन क्रुद्ध हो गये, उन्होंने कहा हमारे सभी शिष्य समान हैं, तुम अपने शिष्य पुंगव क्यों समझते हो, तुम्हें अपनी मेधा पर अभिमान हो गया है। अतः तुम हमारे द्वारा पढ़ायी गयी वेद विद्या को मुझे वापस लौटा दो। जब गुरू वैशम्पायन ने याज्ञवलक्य से अपनी पढ़ाई हुई वेद विद्या को वापस करने का पौनः पुन्येन आदेश दिया तब याज्ञवलक्य ने अपनी योग विद्या से गृहीत वेद विद्या को वमन कर दिया, यजुर्विद्या कृष्ण एवं धूम्रवर्ण में वान्त के रूप में दिखाई पड़ी महर्षि वैशम्पायन ने यजुर्वेद विद्या के लुप्त होने के भय से अपनी योग विद्या से अपने अन्य शिष्यों को तित्तर पक्षी बना दिया तथा आदेश दिया कि इन कृष्ण धूम्र वर्ण वाले यजुवों को ग्रहण करलो शिष्यों ने उन यजुवों को तित्तर पक्षी बन कर ग्रहण कर लिया। याज्ञवलक्य रिक्तवेद होकर पुनः वेदविद्या की प्राप्ति के लिये भगवान् भुवन भास्कर की कठोर आराधना की, जिसके फल स्वरूप उन्हें पुनः वेद विद्या प्राप्त हुयी, भगवान सूर्य ने वाजी- अश्व रूप धारण कर याज्ञवलक्य को यजुर्वेद विद्या प्रदान की, अतः यह वाजसनेयी यजुर्विद्या कहलायी, जो दिन के मध्य में प्राप्त होने के कारण माध्यन्दिन संहिता के रूप में प्रसिद्ध हुयी, और शुक्ल यजुर्वेद संहिता कहलायी, उधर तित्तर के द्वारा गृहीत वेद विद्या तैत्तिरीय कही गयी, विद्वानों ने इसके शुल्कत्व एवं कृष्णत्व के विषय में अनेक कारणों का निर्देश किया है।

प्रसिद्ध विदेशी वैदिक विद्वान मैकडानल के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद विषय की दृष्टि से शुद्ध एवं निर्मल है तथा पाठकों के बुद्धि को प्रकाशित करता है इसमें विवेच्य विषय की क्रमबद्धता सुस्पष्ट है, तथा यह ब्राह्मण भाग से सर्वथा अस्पृष्ट है, अर्थात मिश्रित नहीं है, अतः यह शुक्ल यजुर्वेद के नाम से अभिहित किया गया, जबकि कृष्ण यजुर्वेद मन्त्र और ब्राह्मण एक में मिश्रित होने के कारण मलिन अथवा कृष्ण कहे गये । शतपथ ब्राह्मण में ''आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्ये नाख्यायन्त'' इस कथन से ज्ञात होता है। याज्ञवलक्य के द्वारा सूर्य से प्राप्त वेद विद्या शुक्ल यजुर्वेद कही गयी। इसी तथ्य को भारतीय प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डॉ. मङ्गलदेव शास्त्री जी द्वारा भी स्पष्ट किया गया, उनके अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण के सम्मिश्रण के कारण यजुर्वेद का एक भाग कृष्ण यजुर्वेद तथा सम्मिश्रण रहित शुद्ध मन्त्र होने के कारण द्वितीय भेद शुल्क यजुर्वेद के नाम से अभिहित किया गया । शुक्ल यजुर्वेद को आदित्य सम्प्रदाय का तथा कृष्ण यजुर्वेद ब्रह्म सम्प्रदाय का माना जाता है।

यजुर्वेद का प्रतिपाद्य

विदित है कि यजुर्वेद यजुषों का संकलन है, यजुष् का शाब्दिक अर्थ है, यज्ञ, पूजन, अर्चन, आदर, श्रद्धा आदि । इस प्रकार वेद का वह भाग, जिसका सम्बन्ध यजनपूजनादि से है, यजुर्वेद कहा जाता है । इसकी वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता एवं काण्व संहिता मात्र दो संहितायें प्राप्त होती हैं, वर्ण्य विषय की दृष्टि से दोनों में अधिक समानता है। माध्यन्दिन संहिता में कुल चालिस अध्याय हैं। प्रारम्भ के 25 अध्याय विषय वस्तु की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में - दर्शपौर्णमास के मन्त्र संग्रहीत हैं। तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य के मन्त्र बतलाये गये हैं। चतुर्थ से अष्टम अध्याय पर्यन्त अग्निष्टोमादि सोमयज्ञों से सम्बन्धित मन्त्र प्राप्त होते हैं वाजपेय तथा राजसूय यज्ञों का वर्णन नवम तथा दशम अध्यायों में प्राप्त होता है, एकादश से अष्टदश अध्याय तक अग्निचयेन से सम्बन्धित विवरण तथा याज्ञिक नियमों का संग्रह प्राप्त होता है, उन्नीसवें तथा बीसवें अध्याय में सौमामणी याग से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन है, इक्कीसवें से 25वें अध्याय तक अश्वमेध यज्ञ का विधिविधान एवं प्रार्थनायें निर्दिष्ट हैं छब्बीस से 35 अध्याय तक खिल सूक्त माना जाता है इसी में 31वां अध्याय पुरूष सूक्त कहा गया है, 36 से 39 अध्याय तक प्रवर्ग्य से सम्बन्धित विवरण एवं प्रार्थनायें संग्रहीत हैं। 40वे अध्याय प्रसिद्ध उपनिषद् ईशावास्योपनिषद् के नाम से विख्यात है। इसमें कुल मन्त्र संख्या 1975 हैं ।

कृष्णयजुर्वेद में भी तैत्तिरीय संहिता मुख्य मानी गयी है, विषय वस्तु के दृष्टि से दर्शपूर्णमासादि कर्म दोनों में समान रूप से वर्णित है, मन्त्रों का विनियोग अपनी अपनी संहिता से किया जाता है, यहाँ मन्त्रों के साथ ब्राह्मण भाग का भी संकलन है।

10.5.7 सामवेद मन्त्र संहिता

जिस वेद में गेय मन्त्रों का विशिष्ट प्रकार से संकलन किया गया है, उसे सामवेद मन्त्र संहिता कहा जाता है। सामदेव का महत्त्व प्रतिपादित करते हुये 'वृहद् देवता' नामक ग्रन्थ में कहा गया है "सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम् " अर्थात् जो सामों के विभिन्न प्रकारों को जानता है, वही वेद के तत्त्व को जानता है गीता में भगवान् कृष्ण ने स्वयं को 'सामवेद स्वरूप' कहा है "वेदानां सामवेदोऽस्मि"। साम शब्द का प्रयोग ऋचाओं के ऊपर गाये जाने वाले 'गान' के लिए प्राप्त होता है, सामवेद के मन्त्रों का गान उद्गाता नाम का ऋत्विक् यज्ञीय अवसरों पर करता है।

सामवेद मन्त्र संहिता में केवल 75 मन्त्रों को छोडकर शेष सभी मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं, महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि के अनुसार सामवेद की कभी एक हजार शाखायें थीं, परन्तु सम्प्रति केवल तीन शाखायें प्राप्त होती हैं, (1) कौथुमी शाखा (2) राणायनीय शाखा (3) जैमिनीय शाखा।

सामवेद के पूर्वार्चिक एवं उत्तरार्चिक दो भाग प्राप्त होते हैं, दोनों भागों की सम्पूर्ण ऋक संख्या 1810 है। पूर्वार्चिक के ऋचाओं की संख्या 650 है, इसमें छः प्रपाठक है। प्रथम प्रपाठक में अग्नि देवता से सम्बन्धित ऋचाओं का संग्रह है, अतः इसे 'आग्नेय काण्ड' कहा जाता है। द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक तक इन्द्र देवता से सम्बन्धित ऋचाओं का संग्रह है। अतः इसे 'ऐन्द्रपर्व' कहा जाता है। पञ्चम प्रपाठक में सोमपरक ऋचाओं का संग्रह है, अतः इसे पवमान पर्व कहा जाता है, छठां प्रपाठक आरण्यक पर्व के नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद के उत्तरार्चिक में प्रपाठकों की संख्या नव है, पूर्वार्चिक में ऋचाओं का क्रम छन्द

एवं देवताओं के आधार पर निश्चित हुआ है, परन्तु उत्तरार्चिक में यज्ञों के आधार पर उसका क्रम निर्धारित हुआ है, उत्तरार्चिक के प्रारम्भिक पांच प्रपाठकों में दो दो अध्याय हैं, अन्तिम चार प्रपाठकों में तीन तीन अध्याय हैं उत्तरार्चिक में लगभग 400 गान प्राप्त होते हैं। एक एक गान में प्रायः तीन तीन ऋचायें होती हैं। कहीं कहीं दो या चार ऋचायें भी प्राप्त होती हैं आचार्य जैमिनि ने स्वरों को गान का प्राण कहा है, तथा ऋचाओं को सामगान का मूलाधार या योनि कहा है, सामवेदीय ऋचाओं को संगीतमय करने के लिये कतिपय शब्दों को जोड़ा जाता है, इन्हें 'स्तोम' कहा गया है जो इस प्रकार हैं, हाऊ, होई, औ, हो, ह ऊ आदि। सामवेद के पूर्वार्चिक में ग्राम गान तथा अरण्यगान प्राप्त होता है, जबकि उत्तरार्चिक में ऊजगान तथा उह्यगान प्राप्त होता है।

10.5.8 अथर्ववेद संहिता

चारों वेदों के क्रम में अथर्ववेद का नाम सबसे अन्त में आता है । इसके नामकरण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि आङ्गिरस गोत्रीय अर्थवा नामक ऋषि के द्वारा मन्त्रों का संकलन किया गया, अतः इसका नाम अथर्ववेद पड़ गया। सातवलेकर के अनुसार अथर्व का अर्थ है, गति रहित, स्थिर,निश्चल आदि। क्योंकि निरूक्त में 'थर्वति गतिकर्मा, न थर्वः अथर्वः' ऐसा निर्वचन प्राप्त होता है, इस वेद में मन्त्रों का संकलन ब्रह्मा नामक श्रेष्ठ ऋत्विक् के लिये किया गया है, अतः इसे ब्रह्म वेद भी कहा जाता है, इस वेद में पूर्ववर्ती वेदों का सार निहित है, क्योंकि गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि "श्रेष्ठों हि वेदस्तपसोऽभिजातो ब्रह्मज्ञानं हृदये संबभूव । (गो. ब्रा. 1/9)

एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वाङ्गिरसः । ये अङ्गीरसः स रसः । ये अथर्वाणस्तद् भेषजम् , यद् भेषजं तदमृतम् ,यदमृतं तद् ब्रह्म ।।

सम्पूर्ण अथर्ववेद संहिता में बीस काण्ड हैं सभी काण्डों को 38 प्रपाठकों में विभक्त किया गया है, इसमें 760 सूक्त तथा लगभग 6000 मन्त्र हैं, अनुवाकों की संख्या 80 है। अथर्ववेद के तेरहवें काण्ड तक विषयों का कोई क्रम निश्चित नहीं है उनमें विशेष रूप से प्रार्थनायें, कुछ मन्त्र प्रयोग तथा विधियाँ बतलायी गयी हैं, इन विधियों और प्रयोगों से सभी प्रकार के भय से तथा भूत प्रेत पिशाच-राक्षस-डाकिनी-शाकिनी बेताल आदि से रक्षा की जाती है। जादू, टोना, मारण,मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि के प्रयोगों के लिये भी मन्त्रों का संकलन इसी भाग में हुआ है । चौदहवें काण्ड में विवाह की रीतियों का वर्णन है पन्द्रहवें, सोलहवें एवं सत्रहवें काण्डों में विशेष प्रकार के मन्त्रों का संकलन है, अट्ठारहवें काण्ड में अन्त्येष्टि, क्रिया की विधियां तथा पितरों तथा श्राद्धविधि के मन्त्र संग्रहीत हैं, उन्नीसवें तथा बीसवें काण्डों में विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित मन्त्र हैं, जिसमें इन्द्रसम्बन्धी सूक्त अधिक है, महर्षि पतञ्जलि के अनुसार इसकी कभी नव शाखायें थी, परन्तु सम्पत्ति दो शाखायें, (शौनकीय शाखा तथा पैप्पलाद शाखा) प्राप्त होती है शौनकीय शाखा के काण्डगत विषयों का उल्लेख उपरितन पंक्तियों में किया गया है। इसके अतिरिक्त 'औरव्य" तथा काण्डिकेय नामक दो अन्य शाखाओं के उपलब्ध होने के संकेत प्राप्त होते हैं।

10.5.9 ब्राह्मण ग्रन्थ

वैदिक वाङ्मय में मन्त्रसंहिताओं के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता है, ये ग्रन्थ वैदिक साहित्य के अभिन्न अंङ्ग माने जाते हैं, ब्रह्म का अर्थ है मन्त्र, यज्ञ आदि,ब्राह्मण ग्रन्थ, मन्त्रों का व्याख्यान तथा यज्ञादि विधियों का निर्देश करता है इसके विषय में यह कहा गया है कि "ब्राह्मणं नाम-कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यान ग्रन्थः " । वस्तुतः वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञविज्ञान का गाम्भीर

विवेचन करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मणग्रन्थ कहलाते हैं।शबरस्वामी ने ब्राह्मणग्रन्थों के दस मुख्य विषयों का निर्देश किया है, तद्यथा -

हेतुनिर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
पर क्रिया पुराकल्पो व्यवधारण कल्पना ।।
उपमानं दशैते तु विषया ब्राह्मणस्य च ।।शा भा-2/1/8

प्रत्येक वेद से सम्बन्धित अपने ब्राह्मण भाग प्राप्त होते हैं, क्रमशः उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

10.5.9.1 ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ

ऋग्वेद से सम्बन्धित दो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, (1) ऐतरेय ब्राह्मण (2) कौषीतकी ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, इसमें कुल चालीस अध्याय हैं, जो पांच पांच अध्यायों की आठ पञ्चिकाओं में विभक्त है। इतरा नामक दासी से उत्पन्न महीदास ऐतरेय इसके व्याख्याता माने जाते हैं। प्रारम्भिक 16 अध्यायों में अग्निसोम नाम सोमयज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है, 17वें तथा 18वें अध्यायों में सांवत्सरिक गवामयन संज्ञक सोमयाग का वर्णन किया गया है, उन्नीसमें अध्याय से चौबीसवें अध्याय तक बारह दिवसों में पूर्ण होने वाले 'द्वादशाह' संज्ञक सोमयज्ञों का वर्णन प्राप्त होता है, अवशिष्ट सोलह अध्यायों में आग्निष्टोम यज्ञ तथा कतिपय अन्य विषयों का समावेश है, इसके उन्तालिसवें एवं चालिसवें अध्यायों में क्रमशः ऐन्द्रमहाभिषेक तथा पौरोहित्य सम्वादन विधियों का वर्णन प्राप्त होता है।

कौषीतकी ब्राह्मण का दूसरा नाम सांख्यायन ब्राह्मण भी है यह ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण के प्रारम्भिक पांच अध्यायों का विकसित रूप ही प्रतीत होता है, इस ब्राह्मण में कुल तीस अध्याय हैं, इसमें कतिपय विशिष्ट आख्यानों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें शुनःशेष आख्यान सर्वविदित है। जिसे हरिश्चन्द्रोपाख्यान अथवा वरूणोपाख्यान भी कहा जाता है।

10.5.9.2 यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ

यजुर्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, (1) कृष्ण यजुर्वेदीय तैतिरीय ब्राह्मण (2) शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण, इसमें भी शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शतपथ, तथा शुक्ल यजुर्वेदीय काण्य शतपथ भिन्न भिन्न है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में मुख्यतः सौ अध्याय प्राप्त होते हैं अतः "शतं पन्थानो यस्य' इस निरूक्ति के अनुसार इसे शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है, दोनों शतपथ ब्राह्मणों का प्रतिपाद्य विषय वैदिक श्रोत यागों का निरूपण है, जो विस्तृत होते हुये भी सुव्यवस्थित एवं समान है। माध्यन्दिन शाखा के शत पथ ब्राह्मण का विभाजन चौदह काण्डों में तथा काण्य शाखा के शतपथ ब्राह्मण का विभाजन सत्रह काण्डों में हुआ है। माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भिक नौ काण्डों में वाजसनेयी मन्त्र संहिता के प्रारम्भिक अट्ठारह अध्यायों की व्याख्या दशम काण्ड में अग्निचयन का विवेचन है। ग्यारहवें से 13वें तक उपनयन, स्वाध्याय, अन्त्येष्टि तथा सर्वमेध आदि का विवेचन प्राप्त होता है। इसका चौदहवां काण्ड बृहदारण्यक कहा जाता है, इसके अन्त के अध्यायों में वृहदारण्यकोपनिषद् प्राप्त होता है। जिसका विवेचन उपनिषद् प्रकरण में किया जाएगा।

इस ब्राह्मण ग्रन्थ में रामायण एवं महाभारत के कतिपय कथाओं का स्रोत प्राप्त होता है, संक्षेपतः कद्रू सुपर्णा, की कथा,पुरूरवा- उर्वशी का प्रेमाख्यान अश्विनी कुमारों द्वारा च्यवन ऋषि को यौवन दान, आदि कथायें इसमें उपलब्ध होती हैं इसी में जलप्लावन आख्यान, मत्स्यावतार की कथा का उत्स प्राप्त होता है, जो परवर्ती साहित्य मे काव्य नाटकादि के रूप में विस्तृत हो गये हैं।

10.5.9.3 सामवेद के ब्राह्मण ग्रन्थ -

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार सामवेदीय ब्राह्मणों की संख्या आठ बतलायी गयी है,

जिनके नाम हैं - (1) ताण्ड्य ब्राह्मण (2) षड्विंशब्राह्मण (3) सामविधान ब्राह्मण (4) आर्षेय ब्राह्मण (5) दैवत ब्राह्मण (6) उपनिषद् ब्राह्मण (7) संहितोपनिषद् ब्राह्मण तथा (8) वंश ब्राह्मण । इन ब्राह्मणों में मुख्यतः चार ब्राह्मणों की सत्ता सम्प्रति प्राप्त होती है, (1) ताण्ड्य ब्राह्मण या पञ्चविंश ब्राह्मण (2) षड्विंश ब्राह्मण (3) जैमिनीय ब्राह्मण (4) सामविधान ब्राह्मण। ताण्ड्य ब्राह्मण में पच्चीस अध्याय प्राप्त होते हैं, अतः उसे पञ्चविंश ब्राह्मण भी कहा जाता है, इसमें सामान्यतः विभिन्न सोमयागों का वर्णन किया गया है, रचना की दृष्टि से वह प्रौढ़ तथा प्राचीन माना जाता है, इसमें 'व्रात्यस्तोम' नाम यज्ञ का भी वर्णन मिलता है। ताण्ड्य ऋषि अथवा शाखा से सम्बन्धित होने के कारण इसको ताण्ड्य ब्राह्मण के नाम से अभिहित किया जाता है।

षडविंशब्राह्मण को कुछ विद्वान् ताण्ड्य ब्राह्मण का ही अंग स्वीकार करते हैं क्यों इस ब्राह्मण में भी सामान्यतः सोम यागों का वर्णन है, एक अध्याय अधिक होने के कारण इसका अतिरिक्त नामकरण षड्विंश (छब्बीस अध्यायों वाला) पड़ गया, इसके अन्तिम अध्याय में 'अद्भुत ब्राह्मण' भी कहा जाता है, इसमें देवताओं के हास्य एवं रूदन तथा ऐन्द्रजालिक अनेक अलौकिक घटनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

जैमिनीय ब्राह्मण का सम्बन्ध सामवेदीय तवल्कार शाखा से माना जाता है, जैमिनि के नामपर इस ब्राह्मण का नामकरण प्रतीत होता है। इसमें पांच मण्डल पाया जाता है। प्रथम तीन मण्डलों में यज्ञविधियों का वर्णन है चौथा मण्डल उपनिषद् ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है। पांचवें मण्डल का नाम ही आर्षेय ब्राह्मण है। इसमें सामवेदीय ऋषियों के नामों की एक लम्बी सूची प्राप्त होती है। धार्मिक इतिहास की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

चतुर्थ सामविधान ब्राह्मण में कृच्छव्रतों तथा आयुष्य वृद्धि के साधनों, मोक्ष साधनादि के उपाय वर्णित हैं। इस में सामवेदीय ऋचाओं का प्रयोग धनोपार्जन हेतु एवं शत्रुमारणादि तथा प्रायश्चित्तादि कर्मों के लिये बतलाया गया है। नाना प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिये सामवेदीय गानों तथा अनुष्ठानों का विधान बतलाने के कारण ही इसका नाम सामविधान ब्राह्मण पड़ गया। इस ब्राह्मण में मुख्यतः तीन प्रकरण हैं जिसमें धर्म सूत्रों में वर्णित दोष, अपराध एवं उनके प्रायश्चितों का वर्णन है।

अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थ

अथर्ववेद से सम्बन्धित एकमात्र 'गोपथ ब्राह्मण' प्राप्त होता है, इसके दो भाग हैं पूर्व गोपथ एवं उत्तर गोपथ । प्रथम भाग में पांच अध्याय तथा द्वितीय भाग में कुल छः अध्याय हैं, विषय वस्तु की दृष्टि से इस पर शतपथ ब्राह्मण का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है, इसमें ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों से भी विषय सामग्री ली गयी है, तथा इसकी अतिपरिष्कृत व्याकरण सम्मत शब्दावली इसको अर्वाचीन प्रमाणित करती है।

ब्राह्मण साहित्य के गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ, ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाले 'होता' नाम के ऋत्विक वर्ग के यज्ञीय कार्यों की व्याख्या करते हैं, यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ अध्वर्यु संज्ञक ऋत्विकगण के कार्यों की व्याख्या करते हैं इसी प्रकार सामवेदीय तथा अथर्ववेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ भी क्रमशः उदगाता तथा ब्रह्मा के ऋत्विग्गणों के कार्यों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

10.5.10 बोध प्रश्नोत्तर

प्र. वेद का सामान्य लक्षण क्या है?

उ. 'मन्त्र ब्राह्मणोर्वेदनाम धेयम् ' अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद कहा जाता है, यही वेद

का सामान्य लक्षण है।

प्र. वेदों के कितने विभाग किये गये हैं ?

उ. सभी वेदों के मुख्यतःचार भाग किये गये हैं।
(1) मन्त्रसंहिता, (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक, (4) उपनिषद्

प्र. वेद को 'त्रयी' क्यों कहा जाता है?

उ. वेद के शब्दों का उच्चारण गद्य, पद्य, तथा गीतमय रूप में किया जाता है, उच्चारण धर्म के त्रित्व से वेद को 'त्रयी' शब्द से अभिहित किया जाता है।

प्र. सूक्त किसे कहते हैं?

उ. मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के सुभाषित वचन सूक्त कहे जाते हैं, व्यावहारिक रूप में एक ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्रों का समुदाय सूक्त कहलाता है।

प्र. ऋग्वेद में कुल कितने मण्डल तथा सूक्त हैं?

उ. ऋग्वेद में कुल 10 मण्डल तथा 1028 सूक्त हैं।

प्र. अनुवाक किसे कहते हैं?

उ. ऋग्वेद के विभाजन में मण्डल के अन्तर्गत अनेक सूक्तों के समुदाय को अनुवाक बताया गया है, जिसकी कुल संख्या 85 है।

प्र. ऋग्वेदीय सप्तम मण्डल का ऋषि कौन है?

उ. ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के ऋषि वशिष्ठ हैं।

प्र. वंश मण्डल किसे कहते हैं?

उ. ऋग्वेद के दसोंमण्डलों में 2 से 7 मण्डल तक के ऋषि समान गोत्रीय अथवा एक ही वंश के हैं अतः इन अध्यायों को 'वंशमण्डल' के नाम से जाना जाता है।

प्र. बालाखिल्य सूक्त किसे कहते हैं?

उ. 'बालाखिल्य' परिशिष्ट शब्द का पारिभाषिक नामान्तर है, ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के अन्त में 11 बालखिल्य सूक्त परिशिष्ट के रूप में जोड़े गये हैं।

प्र. यजुर्वेद के कृष्ण एवं शुक्ल होने का सामान्य भेद क्या है?

उ. मन्त्र और ब्राह्मण भाग का मिश्रित रूप में प्राप्त होना कृष्णत्वं तथा मन्त्रसंहिता एवं ब्राह्मणभाग का अलग अलग प्राप्त होना शुक्लत्व कहा गया है।

प्र. सामवेद में कितने प्रपाठक एवं पर्व हैं?

उ. सामवेद में कुल छः प्रपाठक एवं चार पर्व हैं पर्वों के नाम हैं - आग्नेय पर्व, ऐन्द्र पर्व, पवमान पर्व, तथा आरण्यक पर्व है।

प्र. सांख्यायन ब्राह्मण किस वेद से सम्बन्धित है?

उ. ऋग्वेदीय कौषीतकी ब्राह्मण का ही दूसरा नाम सांख्यायन है।

प्र. काण्य शतपथ ब्राह्मण में कुल कितने अध्याय तथा काण्ड हैं?

उ. काण्व शतपथ में कुल 104 अध्याय तथा 17 काण्ड है, जबकि माध्यन्दिन शतपथ में कुल 100 अध्याय तथा 14 काण्ड हैं।

प्र. सामवेदीय ऋषियों की नामावली किस ब्राह्मण में प्राप्त होती है?

उ. आर्षेय ब्राह्मण में सामवेदीय ऋषियों के नामों की लम्बी सूची प्राप्त होती है।

इकाई - 11 आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्ग

इकाई की रूपरेखा

(क) उद्देश्य
(ख) प्रस्तावना
(ग) इकाई की परिधि
(घ) नियत भाग का व्याख्यान
(ङ) बोध प्रश्नोत्तर

11.1 उद्देश्य

वैदिक वाङ्मय का साङ्गोपाङ्ग परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से पिछली इकाई में मन्त्र संहिता तथा ब्राह्मण भाग का परिचय कराया जा चुका है। इस इकाई में शेष भाग से परिचय कराना उद्देश्य है।

11.2 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक वाङ्मय सर्वप्रथम एवं विस्तृत है, उसके चारों स्तम्भों का पूर्ण परिचय प्राप्त करना प्रत्येक विद्यार्थी के लिये आवश्यक है, सुगमता की दृष्टि से दो इकाइयों में सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय से परिचित कराने की प्रकल्पना की गयी है , पूर्व चौथी इकाई में संहिता एवं ब्राहमण भाग से परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त अब आप इस इकाई में आरण्यक एवं उपनिषद तथा वेदाङ्गों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

11.3 इकाई की परिधि

इस इकाई में विवेच्य विषय है, आरण्यक उपनिषद् एवं वेदाङ्ग । विदित है कि आरण्यक एवं उपनिषद ब्राह्मण भाग के ही परिशिष्ट हैं, जिनकी चर्चा पिछली इकाई में की जा चुकी है। प्रत्येक वेद से सम्बन्धित आरण्यक एवं उपनिषद प्राप्त होते हैं, वेदाङ्गों में शिक्षा एवं कल्पसूत्र भी वेदानुसार बतलाये गये हैं, वेद के इन्हीं दोनों भागों तथा समस्त वेदाङ्गों पर यथा प्रमाण प्रकाश डालना इस इकाई का उद्देश्य है, अतः इन्हीं विषयों को क्रम से अगली पंक्तियों में परिचित कराया जाएगा।

11.4 नियत भाग का व्याख्यान

11.4.1 आरण्यक

आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण तथा उपनिषद ग्रन्थों के मध्यवर्ती साहित्य माने जाते हैं, ये ब्राह्मण ग्रन्थों की ही भाषा शैली में उनके पूरक ग्रन्थ के रूप में प्राप्त होते हैं। आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययनाध्यापन नगरों तथा ग्रामों से सुदूर अरण्यों में होता था, तैत्तिरीय आरण्यक के भाषा में आचार्य सायण ने कहा है कि - अरण्याध्यायनादेतद् आरण्यकमितीर्य ते ।

अरण्ये तदधीयीतेत्यैवं वार्म्य प्रचक्षते ।।

अति प्राचीन भारत में भारतीय आश्रम व्यवस्था के अनुसार ब्रह्मचर्य अवस्था में संहिता ग्रन्थ, गृहस्थाश्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ, वानप्रस्थ आश्रम में आरण्य ग्रन्थ तथा संन्यास आश्रम में उपनिषद् ग्रन्थों का अध्ययन विहित था। वानप्रस्थी व्यक्ति जंगलो में जाकर आरण्यक ग्रन्थों का ही अध्ययन एवं मनन करता था, तथा तदनुसार उपासना करता था।

आरण्यक ग्रन्थों का शाब्दिक कलेवर ब्राह्मण ग्रन्थों के समान ही पाया जाता है, परन्तु वर्ण्य विषय में सामान्य अन्तर दिखाई पड़ता है जो क्रमशः रहस्यात्मक दृष्टान्तों अथवा रूपकों के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन में बदल गया है। साधारणतः धार्मिक क्रिया कलापों और रूपकों वाले भाग ही आरण्यक कहलाते हैं तथा दार्शनिक भाग उपनिषद् कहलाते हैं, आरण्यक ग्रन्थ धार्मिक उपासनाओं का मुख्यतः वर्णन करते हैं, तथा यत्र तत्र उनकी रहस्यपूर्ण व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन काल में वैदिक शिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर विद्यार्थीयों के समक्ष तीन मार्ग होते थे। (1) अपने गुरू के समीप आजीवन रहना (2) गृहस्थ जीवन बिताना (3) वैरवानस अथवा वानप्रस्थी बनना। जिनमें से एक का चयन कर वह जीवन यापन करता था। सम्भवतः तृतीय मार्ग के लिए ही आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययन निहित था।

11.4.2 ऋग्वेद में आरण्यक ग्रन्थ

ऋग्वेद के दो आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनके नाम हैं - (1) ऐतरेय आरण्यक और कौषीतकि आरण्यक । ऐतरेय आरण्यक का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से है, इसमें पांच खण्ड प्राप्त होते हैं. इसके दूसरे खण्ड में उत्तरार्द्ध के चार परिच्छेदों में वेदान्त का प्रतिपादन प्राप्त होता है। इसीलिए इसे ऐतरेय उपनिषद् के नाम से जाना जाता है। ऐतरेय आरण्यक के प्रथम खण्ड में महाव्रत , द्वितीय में उक्थ भस्म प्राणविद्या तथा पुरूष का विवेचन है, तृतीय में ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित पदपाठ, क्रमपाठ, स्वरं तथ व्यञ्जन के स्वरूप का विवेचन है। चौथे तथा पांचवें खण्डों में कतिपय अन्य विषयों के साथ "निस्कैवल्प शस्म का वर्णन प्राप्त होता है, कतिपय विद्वान उपर्युक्त पांच खण्डों को ही पांच आरण्यक के नाम से अभिहित करते हैं।

ऋग्वेद का दूसरा आरण्यक कौषीतकि या सांख्यायन आरण्यक कहा जाता है, इसमें तीन खण्ड प्राप्त होते हैं। प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में कर्मकाण्डीय निर्देश एवं विधियाँ वर्णित हैं तीसरा खण्ड ही कौषीतकि उपनिषद् कहा जाता है। इसमें अध्यायों की संख्या पन्द्रह है।

11.4.3 यजुर्वेद के आरण्यक ग्रन्थ

शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र आरण्यक वृहदारण्यक प्राप्त होता है, इसमें जीव,जगत, एवं आत्मतत्व का विभेद विवेचन किया गया है, कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय आरण्यक मिलता है, इसमें दस प्रपाठक हैं. इसके प्रथम और तृतीय प्रपाठक में यज्ञाग्नि् की स्थापना के नियम बतलाये गये हैं। दूसरे प्रपाठक में स्वाध्याय के नियम बतलाये गये हैं। चतुर्थ से षष्ठ तक के प्रपाठकों में दर्शपूर्णमासादि तथा पितृमेधादि विषयों का विचार किया गया है। इसका सातवां,आठवां,नौवां प्रपाठक तैत्रीरीय उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें शिक्षा एवं ब्रह्मविद्या का विशद प्रतिपादन किया गया है।

11.4.4 सामवेद के आरण्यक ग्रन्थ

सामवेद से सम्बन्ध रखने वाले दो आरण्यक सम्प्रति प्राप्त होते हैं (1) छान्दोग्य आरण्यक

(2) तवलकार आरण्यक । छान्दोग्य आरण्यक में छः प्रपापक प्राप्त होते हैं, इसका सम्बन्ध सामसंहिता के मन्त्रों का गान करने वाले छान्दोगों से है, इस आरण्यक में छन्दोगों के करणीय कार्यों का निर्देश हुआ है, प्रसिद्ध सामवेदीय उपनिषद् "छान्दोग्योपनिषद् " इसी का परिशिष्ट है। तवल्कार आरण्यक को 'जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण " भी कहा जाता है, इसमें चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में छोटे-छोटे अनुवाक हैं। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक में प्रसिद्ध उपनिषद् "केनोपनिषद् " वर्णित है।

11.4.5 अथर्ववेद के आरण्यक ग्रन्थ

अथर्व वेद से सम्बन्धित एक भी आरण्यक ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होता है, अथर्ववेद से सम्बद्ध जो अनेक उपनिषद् उपलब्ध होते हैं, वे किसी आरण्यक के अंश न होकर स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्राप्त होते हैं।

आरण्यक ग्रन्थों के अध्ययन से यह तथ्य उद्गत होता है कि उपनिषदों में जो ज्ञान काण्ड प्राप्त होता है, उनका प्रारम्भ आरण्यकों में ही हो गया था, आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार आरण्यकों का मुख्य विषय यज्ञ नही,प्रत्युत यज्ञ भागों के भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्यों की मीमांसा करना है, इनमें प्राण विद्या तथा प्रतीक उपासना का विषय वर्णित किया गया है।

11.5 उपनिषद् ग्रन्थ

वैदिक वाङ्मय के चतुर्थ अंग के रूप में उपनिषदों की गणना की जाती है। वेद के अन्तिम भाग होने के कारण इन उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। भारतीय तत्त्वज्ञान तथा धर्म सिद्धान्तों के मूल स्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त हैं, वैदिक धर्म की मूल तत्त्व प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी में 'उपनिषद ग्रन्थ ही मुख्य माने गये हैं। अन्य दो प्रस्थान गीता तथा ब्रह्मसूत्र का आधार भी वही है।

उपनिषद् मुख्यतया ब्रह्मविद्या का द्योतक है, क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षु जनों की संसार बीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है। उपनिषदों की संख्या में पर्याप्त मतभेद है, मुक्तकोपनिषद् के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है, जिसमें आचार्य शंकर ने दश उपनिषदों पर अपना महत्त्वपूर्ण भाष्य लिखा है, वस्तुतः यही उपनिषद् प्राचीनतम एवं प्रामाणिक माने जाते हैं,उनके नामों का क्रम इस प्रकार है -

ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं वृहदारण्यकं दश ।।

उपनिषदों में जीव और जगत् के रहस्यों के उदघाटन के साथ अन्तिम ध्येय ब्रह्मतत्त्वका निरूपण किया गया है। यहाँ कतिपय प्रमुख उपनिषदों का परिचय दिया जा रहा है।

11.5.1 ऐतरेयोपनिषद्

यह उपनिषद् ऋग्वेद से सम्बद्ध अत्यन्त लधुकाय माना जाता है, ऐतरेय ब्राह्मण के द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ से षष्ठ अध्यायों को 'ऐतरेयोपनिषद् ' कहा गया है। इसमें तीन अध्याय हैं जिनमें क्रमशः सृष्टिविद्या, जीवात्मा तथा ब्रह्मतत्त्व का निरूपण किया गया है।इस उपनिषद् का मूलाधार ऋग्वेदीय पुरूष सूक्त है, जिसमें समस्त चराचर जगत को एकमात्र आत्मा = पुरूष से उदभूत बतलाया गया है।

11.5.2 कौषीतकि उपनिषद्

इस उपनिषद् का भी सम्बन्ध ऋग्वेद से हैं,कौषीतकि आरण्यक के तृतीय एवं षष्ठ अध्यायों को मिला कर कौषीतकि उपनिषद् कहा गया है इसका उपदेश सम्भवतः कुषीतक नामक ऋषि के द्वारा किया गया प्रतीत होता है, इसमें कतिपय याज्ञिक विधानों के साथ ब्रह्म सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन किया गया है।

11.5.3 श्वेताश्वतरोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है, इसमें सम्पूर्ण विश्व को मायिक तथा ब्रह्म का प्रतिरूप माना गया है, इसमें यत्र तत्र योग के सिद्धान्तों सम्यक् प्रतिपादन प्राप्त होता है, यह कठोपनिषद् का उत्तरवर्ती उपनिषद् है क्योंकि इसमें कठोपनिषद् के अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं।

11.5.4 कठोपनिषद्

यह भी कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद् है, इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से है, इसमें दो अध्याय है, तथा प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन बल्लियाँ हैं इसमें यम-नचिकेता के संवाद के माध्यम से मानव मात्र के कल्याण के लिये जीव,जगत और परमात्म तत्व का सरलतम एवं हृदयग्राही उपदेश प्रस्तुत किया गया है। श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य को बांधते हैं परन्तु आत्म ज्ञानी प्रेय से अपने को मुक्त कर लेता है तथा श्रेय का वरण कर लेता है। इसी तथ्य को इस उपनिषद् में अच्छी तरह समझाया गया है।

11.5.5 तैत्रिरीयोपनिषद्

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक का सातवां, आठवां, नौवां, प्रपाठक ही वस्तुतः तैत्रिरीयोपनिषद् कहा जाता है, इन तीनों प्रपाठकों में क्रमशः शिक्षा का माहात्म्य, ब्रह्मतत्व निरूपण, तथा वरूण द्वारा अपने पुत्र को दिया गया ब्रह्मज्ञान (वारूणी विद्या) का निरूपण प्राप्त होता है। इन प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षा बल्ली, ब्रह्मानन्द बल्ली, तथा भृगुबल्ली के नाम से अभिहित किया जाता है इसमें ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए यद्यपि वारूणीउपनिषद् का प्राधान्य है तथापि चित्र की शुद्धि तथा गुरूकृपा की प्राप्ति के विभिन्न शिक्षा बल्ली का साधन के रूप में उपयोग आवश्यक है।

11.5.6 मैत्रायणीयोपनिषद्

इस उपनिषद् का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी शाखा से है,इसमें सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया हैं। इसमें सात प्रपाठक हैं, तथा पूरा उपनिषद् प्रायः गद्यात्मक है,इसमें प्रश्नोत्तर के माध्यम से मोक्ष अथवा ब्रह्मज्ञान जैसे विषयों का निरूपण किया गया है।

11.5.7 वृहदारण्यकोपनिषद्

यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है,शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण के 14वें काण्ड का अन्तिम छः अध्याय ही वृहदारण्यकोपनिषद् कहा जाता है, यह पर्याप्त विशालकाय होने से वृहद आरण्यक कहा गया है, यह तीन भागों में विभक्त है तथा पुनः प्रत्येक भाग के दो दो अध्याय किये गये हैं, प्रथम भाग 'मधुकाण्ड', द्वितीय भाग 'याज्ञवलक्य काण्ड' तृतीय भाग 'खिल काण्ड' कहा

जाता है, इसमें आत्मतत्व का विस्तृत विवेचन किया गया है।

11.5.8 ईशावास्योपनिषद्

इस उपनिषद् का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेदीय मन्त्र संहिता से है, शुक्ल यजुर्वेद का अन्तिम चालीसवां अध्याय "ईशावास्यमिदं सर्वम् " से प्रारम्भ होता है, अतः यह "ईशावास्योपनिषद् नाम से कहा जाता है, इसमें केवल 18 मन्त्र हैं, परन्तु उपनिषदों के सभी विषयों का समावेश इसमें संक्षेपतः हो गया है । प्रथमतः वेदोक्त कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करने के लिए उपदेश दिया गया है, अन्त में सबकुछ ईश्वर का मान कर त्यागभावना से सासांरिक वस्तुओं उपभोग का निर्देश दिया गया है।

11.5.9 छन्दोग्योपनिषद्

यह सामवेदीय उपनिषद् है। इसमें आठ प्रपाठक हैं जिनमें अन्तिम तीन प्रपाठक आध्यात्म ज्ञान की दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण है, आदि के प्रपाठकों में ऊँकार का स्वरूप, साम एवं उद्गीत का महत्त्व,सूर्य की उपासना एवं जन्म का विवेचन, गायत्री महत्त्व,आध्यात्म शिक्षा आदि विषयों का निरूपण किया गया है, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह प्रसिद्ध श्रुतिवाक्य इसी उपनिषद् से लिया गया है। इसी में रैक्व का दार्शनिक तथ्य, सत्यकाम जाबाल का आख्यान, तथा महाराज उपकोशल को सत्यकाम जाबाल से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का रोचक विषय प्रस्तुत किया गया है। "तत्त्वमासि" यह महा वाक्य यही से लिया गया है,इसमें परम दार्शनिक आचार्य 'आरूणि' है, तथा इसी में सनत्कुमार तथा नारद का नितान्त विश्रुतवृत्रान्त वर्णित है, जिसका अन्तिम उपदेश है, "यो वै भूमा तदमतम् ,अथ यदल्यं तन्मर्त्यम् " ।

11.5.10 केनोपनिषद्

यह सामवेदीय जैमिनीय शाखा के ब्राह्मण ग्रन्थ तवलकार का नवम अध्याय है, अपने प्रारम्भिक पद - (केनेषितं पतति प्रेषित मनः) के कारण इसका नाम "केनोपनिषद्" होगया है, इसमें कुल चार खण्ड हैं, प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बतलाया गया है, दूसरे में रहस्य मय तत्त्व का संकेत है, तीसरे तथा चौथे में हैमवती भगवती उमा के रोचक आख्यान द्वारा परब्रह्मपरमात्मा के सर्वशक्तिमान होने का तथा इन्द्रादि देवताओं के अल्पशक्तिमान होने का सुन्दर निदर्शन दिया गया है।

11.5.11 मुण्डकोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेदीय शौनक शाखा से सम्बद्ध है, सम्पूर्ण उपनिषद् तीन मुण्डकों में विभक्त है, पुनः प्रत्येक मुण्डक दो दो अध्यायों में विभक्त है, इस उपनिषद का नामकरण सम्भवतः 'मुण्ड' साधुओं के नाम पर पड़ा है, जो आध्यात्म चिन्तन के लिए अपने सिर को सदैव मुड़ाये रखते थे, इसमें सृष्टि की उत्पत्ति तथा ब्रह्मतत्त्व का विवेचन किया गया है।

11.5.12 माण्डूक्योपनिषद्

यह उपनिषद् भी अथर्ववेद से सम्बन्धित अत्यन्त लघुकाय उपनिषद् है, इसमें कुल 12 मन्त्र हैं, प्रथम मन्त्र से ही ओंकार की महिमा का वर्णन किया गया है तथा अवसान भी ओंकार तत्त्व की

महिमा के साथ हुआ है।

11.5.13 प्रश्नोपनिषद्

इस उपनिषद् का सम्बन्ध अथर्व वेद की पिप्पलाद शाखा से है, सम्पूर्ण उपनिषद् प्रायः गद्यमय है, इसमें महर्षि पिप्पलाद के द्वारा छः जिज्ञासु ऋषियों के छः प्रश्नों का विचार पूर्ण उत्तर प्रस्तुत किया गया है तथा इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देने के व्याज से आत्म तत्त्व का विशद विवेचन किया गया है।

उपर्युक्त उपनिषदों के अतिरिक्त अनेक अन्य उपनिषदों की भी सत्ता प्राप्त होती है जैसे महानारायणोपनिषद्, वास्कलमन्त्रोपनिषद् , छागलेयोपनिषद्, आर्षेयोपनिषद, शौनकोपनिषद् आदि। इन उप निषदों में आध्यात्म तत्त्व का विवेचन तथा मानवीय कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है।

11.6 वेदाङ्गो का सामान्य परिचय

वेद मन्त्रों का सही उच्चारण तथा उनके अर्थों का सही बोध सम्पन्न करने के लिए ही प्राचीन आचार्यों ने वेद के छः सहायक ग्रन्थों का निर्माण किया, जिन्हें वेदाङ्ग कहा जाता है, इनके नाम हैं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष। वेदों के शुद्ध पाठ, अर्थज्ञान, यज्ञों में मन्त्रों की उपयोगिता, यज्ञ के लिए उचित समय का ज्ञान, तथा वेदी निर्माण की सही प्रक्रिया का परिज्ञान, आदि अनेक विषय उपर्युक्त वेदाङ्गों के वर्ण्य विषय हैं। पाणिनि शिक्षा के अनुसार घ्राण (नासिका) हस्त, मुख, श्रोत्र,पाद, तथा नेत्र क्रमशः शिक्षादि के रूप में वेद के अंङ्ग माने गये हैं जैसे -

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षु र्निरूक्तं श्रोत्र मुच्यते ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्तम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

पा.शि. 41,42

जिस प्रकार आंख,नाक, कान, मुख, हाथ और पैर से शरीर सर्वाङ्ग पूर्ण माना जाता है, उसी प्रकार इन शिक्षा आदि वेदाङ्गों के अध्ययन से वेदाध्ययन की परिपूर्णता मानी जाती है, यहाँ वेदाङ्गों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

11.6.1 शिक्षा

षड्वेदाङ्गों में शिक्षा का स्थान प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण हैं। यह वेद की नासिका बतलायी गयी है, (शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य)। शिक्षा का लक्षण यह बतलाया गया है ''स्वर वर्णोच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'' अर्थात् जिस शास्त्र में वेदमन्त्रों के स्वरों तथा वर्णों के उच्चारण का ठीक ठीक उपदेश किया गया हो, उसे 'शिक्षा' नामक वेदाङ्ग कहा जाता है।

वेदों की विभिन्न शाखाओं के उच्चारण प्रकार को बतलाने के लिये प्राचीन आचार्यों ने विभिन्न शिक्षा ग्रन्थों का निर्माण किया। शिक्षा संग्रह नामक ग्रन्थ में 32 शिक्षा ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें प्रतिवेद से सम्बन्धित भिक्षा ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। सम्प्रति शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवलक्य शिक्षा, कृष्ण यजुर्वेद की व्यास शिक्षा, सामवेद की नारदीय शिक्षा, तथा अथर्ववेद की माण्डूरी शिक्षा सुव्यवस्थित रूप में उपलब्ध होती है, पाणिनि शिक्षा को ऋग्वेदीय शिक्षा के रूप में

मान्यता दी जाती है। इसके अतिरिक्त वाशिष्ठी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, गौतमी शिक्षा, आपिथली शिक्षा, केशवी शिक्षा आदि का भी अस्तित्व प्राप्त होता है।

शिक्षा ग्रन्थोंके वर्ण्य विषयों में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान, इन्हीं छः तत्वों की गणना की गयी है। इन्हें विषयों में से किसी एक या दो विषय को लेकर शिक्षा ग्रन्थों की प्रवृत्ति देखी जाती है, प्रातिशाख्यों में भी शिक्षा के विवेच्य विषय प्राप्त होते हैं, अतः प्रातिशाख्य को शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत रखा गया है।

11.6.2 कल्प

षड्वेदाङ्गों में दूसरा वेदाङ्ग 'कल्प' के नाम से जाना जाता है, इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, वैदिक कर्मानुष्ठान का प्रतिपादन, संस्कारों का विधान, वेदी निर्माणादि का निर्देश तथा धार्मिक आचार विचारों का उपदेश आदि। कल्पग्रन्थ प्रायः सूत्रों में प्रणीत है, जिन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है, (1) श्रौत सूत्र (2) गृह्य सूत्र (3) शुल्ब सूत्र (4) धर्मसूत्र।

श्रौत सूत्रों में श्रुति द्वारा प्रतिपादित कर्मों के विधान का निर्देश किया गया है, जैसे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, सोमयाग, राजसूययाग, अश्वमेध याग आदि।

गृह्य सूत्रों में स्मृति तथा पुराणादि ग्रन्थों द्वारा प्रनिपादित पारिवारिक संस्कारों के कृत्यों का निर्देश किया गया है, जैसे विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन, नामकरण, अन्नपाराशन, आदि संस्कार।

शुल्बसूत्र में वेदी तथा मण्डप, कुण्ड आदि के निर्माण में यथाशास्त्र लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, आदि के विषय में निर्देश किया गया है। इसी प्रकार धर्म सूत्र में यज्ञीय कार्यों में लगे हुये ऋत्विक यजमानों के लिये पालनीय नियमों एवं करणीय आचारों का निर्देश प्राप्त होता है। कल्प वेदाङ्ग के ये चारों विभाग प्रत्येक वेद के अनुसार भिन्न भिन्न प्राप्त होते हैं। जैसे कात्यायन श्रौत्रसूत्र, आश्वलायन श्रौस सूत्र, सत्याषाठ श्रौत्र सूत्र, बोधायन श्रौत सूत्र, आपस्त्त श्रौतसूत्र, भारद्वाज श्रौत सूत्र, पाधूल श्रौत सूत्र आदि।

श्रौत सूत्रों की तरह गृह्य सूत्र तथा धर्म सूत्रों की भी विभिन्नता प्राप्त होती है। जैसे आश्वलायन गृह्यसूत्र, पारस्कर गृह्य सूत्र, शांखायन गृह्यसूत्र, कौंशिक गृह्य सूत्र, खादिरगृह्य सूत्र आदि। धर्म सूत्र संप्रति पांच उपलब्ध होते हैं। आपस्तम्बधर्म सूत्र, हिरण्य के भी धर्मसूत्र, बोधायन धर्म सूत्र, गौतम धर्मसूत्र, तथा वशिष्ठ धर्म सूत्र। इसी प्रकार शुल्ब सूत्रों में कात्यायन शुल्बसूत्र मानवशुल्व सूत्र,मैत्रायणी शुल्ब सूत्र, तथा वाराह शुल्ब सूत्र का उल्लेख प्राप्त होता है।

11.6.3 व्याकरण

व्याकरण शास्त्र को वेदपुरूष का मुख बतलाया गया है, वेदाङ्गों में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, शब्दों में प्रकृति प्रत्यय को बोध कराकर शब्दार्थ बोध कराना ही इसका मुख्य प्रयोजन है। तद्यथा "व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम् " व्याकरण की परम्परा यद्यपि बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है फिर भी छठी शताब्दी में महर्षि पाणिनि ने लगभग 4000 सूत्रों से समन्वित आठ अध्यायों में व्यवस्थित "अष्टाध्यायी" नामक ग्रन्थ की रचना करके व्याकरण परम्परा को स्थिरता प्रदान की। अष्टाध्यायी में कुल आठ अध्याय, तथा प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण अष्टाध्यायी ग्रन्थ 32 पादों में विभक्त है, इसमें लौकिक संस्कृत के साथ

वैदिक संस्कृत व्याकरण का भी विवेचन किया गया है। इसी ग्रन्थ पर आचार्य कात्यायन ने वार्तिक लिखकर पाणिनि की दृष्टि से ओझल हुये कतिपय तथ्यों को स्पष्ट कर दिया है, पुनः महर्षि पतञ्जलि ने इसी ग्रन्थ पर विस्तृत 'महाभाष्य' की रचना कर पाणिनि एवं कात्यायन के सूक्ष्म दृष्टिकोण का यथोचित समर्थन किया है।

इस प्रकार इन तीनों मुनियों (पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि) के द्वारा 'व्याकरण' नामक वेदाङ्ग ने परिपूर्णता को प्राप्त कर लिया। महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण शास्त्र के मुख्य पांच प्रयोजन बतलाये हैं- "रक्षोहागमलध्व सन्देहाः प्रयोजनम् " अर्थात् वेदों की रक्षा, नूतन पदों की संरचना, आगम = श्रुतियों के तात्पर्य का परिज्ञान,लघु पदों से विस्तृत अर्थ को बोध कराना, तथा सर्वथा सन्देह रहित अर्थ का निरूपण करना व्याकरण शास्त्र का प्रयोजक है।

11.6.4 निरूक्त

आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्यभूमिका में निरूक्त का लक्षण बतलाया है, "अर्थावबोधे पद जातं यत्रोक्तं तनिरूक्तम् " अर्थात् अर्थ बोध के लिए कठिन पदों में स्वतन्त्र रूप से प्रकृति प्रत्यय की कल्पना करके अर्थनिर्धारण करने वाला शास्त्र 'निरूक्त' कहा जाता है। वस्तुतः वैदिक क्लिष्ट पदों का संग्रह प्राचीन ऋषियों ने 'निघण्टु' नामक ग्रन्थ में किया था, जिन में सरलता से प्रकृति- प्रत्यय का बोध नहीं हो पाता था, उत्तरवर्ती आचार्यों ने उन क्लिष्ट पदोंपर अपनी व्याख्या की, जो निरूक्त शास्त्र के नाम से जाना गया। इस प्रकार निघण्टु पर व्याख्या करने वाले निरूक्तकार कहे गये। सम्प्रति उपलबध निरूक्त के रचनाकार 'यास्क' माने जाते हैं। इन्होंने निघण्टु के पांच अध्यायों की व्याख्या 12 अध्यायों में की है, जो 'निरूक्त शास्त्र' के नाम से जाना जाता है, बाद में परिशिष्ट के रूप में दो अध्याय और जोड़ दिये गये हैं, इस प्रकार सम्प्रति उपलब्ध निरूक्त तीन काण्ड (नैधण्टुक काण्ड, नैगमकाण्ड, दैवतकाण्ड) तथा 14 अध्यायों में विभक्त है, निरूक्त के प्रसिद्ध भाष्य कार 'दुर्गाचार्य' माने जाते हैं, आचार्य 'यास्क' ने अपने पूर्ववर्ती निरूक्तकारों का स्मरण निरूक्त में किया है, एक मान्यता के अनुसार 'आचार्य यास्क' 14वें निरूक्तकार माने जाते हैं। निरूक्त का वर्ण्य विषय मुख्यतः पांच बतलाया गया है तद्यपा

वर्णागमो वर्ण विपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण विकार नाशौ ।
धातो स्तदर्थातिशयेन योगः तदुच्यते पञ्चविद्यं निरूक्तम् ।।

अर्थात् वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश, धातु के अतिशय अर्थ का योग इन्हीं पांच उपायों से शब्द का निर्वचन किया जाता है। निरूक्त के दैवत काण्ड में देवताओं का स्वरूप, तथा उनके निवास स्थान एवं सहयोगी देवी-देवताओं के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

11.6.5 छन्दः शास्त्र

"छन्दः पादौ तु वेदस्य" कथन के द्वारा छन्द को वेद का पाद बतलाया गया है, जिस प्रकार पाद के बिना किसी भी जीव की गति नहीं हो सकती। उसी प्रकार छन्दः परिज्ञान के बिना वेदमन्त्रों के उच्चारण एवं अर्थबोध में गति नहीं आ सकती है। आचार्य कात्यायन ने 'सर्वानुक्रमणी' नामक ग्रन्थ में 'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः' के द्वारा छन्द का लक्षण बतलाया है। सम्पूर्ण ऋग्वेद, सामवेद, एवं अथर्ववेद छन्दों पर आधारित विभिन्न पादों में व्यवस्थित हैं, यजुर्वेद में भी छन्द हैं परन्तु उनका उच्चारण यजुर्वेदीय उच्चारण धर्म मे अर्थात गद्यमय रीति से किया जाता है। गायत्री-उष्णिक आदि

छन्दों पर समस्त वेदों का समाम्नान होने के कारण 'छन्दस् ' शब्द से वेद का बोध किया जाता है।

आचार्य कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' में मुख्यतः सात वैदिक छन्दों का उल्लेख हुआ है, गायत्री,उष्णिक,अनुस्टुप, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, इनमें क्रमशः 24, 28, 32, 36, 40, 44. 48, अक्षरों का परिमाण बतलाया गया है, इसके भूरिक निभृत आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं । पिङ्गलाचार्य रचित "पिङ्गलछन्दः सूत्रम् " के वैदिक प्रकरण में वेद के समस्त छन्दों का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है,प्रायः सभी वैदिक छन्द आक्षरिक हैं, इन्हीं के आधार पर लौकिक छन्दो के आक्षरिक एवं मात्रिक स्वरूप का विकास माना जाता है।

11.6.6 ज्योतिष शास्त्र

'ज्योतिषं नेत्र मुच्यते' के अनुसार ज्योतिष शास्त्र वेद का नेत्र माना गया है, याज्ञिक विधि विधान के लिए तिथि, नक्षत्र, पक्ष,मास, ऋतु तथा सम्वत्सर का परिज्ञान आवश्यक बतलाया गया है, इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'वेदाङ्ग ज्योतिष' का अध्ययन अपरिहार्य माना गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष से सम्बन्धित प्राचीन काल के दो प्रमुख ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, (1) याजुष ज्योतिष (2) ऋकज्योतिष, स्पष्ट है कि याजुष ज्योतिष का सम्बन्ध यजुर्वेद से तथा ऋक ज्योतिष का सम्बन्ध ऋग्वेद से है। प्राचीन कालिक 'लगध' नाम के एक आचार्य ने भी 'वेदाङ्ग ज्योतिष' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जिसमें वैदिक यज्ञानुष्ठानों के लिये विहित नक्षत्रादि का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। उस समय वराहमिहिर द्वारा रचित 'सूर्य सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ ने भी विशेष महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त किया। बाद के समयों में ज्योतिष से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना हुयी, प्रारम्भ में ज्योतिष के दो भेद पाये जाते थे, (1) गणित ज्योतष, (2) फलित ज्योतिष। कालान्तर में होरा, संहिता, गणित,प्रश्न,और निमित्त इन पांच अंगोंका विकास हुआ।

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा तिथि नक्षत्रादि का परिज्ञान करने के उपरान्त ही वैदिक यज्ञानुष्ठानादि कर्मों को समुहूर्त में करने का निर्देश प्राप्त होता है, तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि ब्राह्मण को वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय को ग्रीष्म ऋतु में, और वैश्य को शरद ऋतु में अग्नि का आधान करना चाहिए, इसी प्रकार कुछ यज्ञ की सायंकाल एवं प्रातःकाल, विशिष्ट मासों, पक्षों एवं तिथियाँ बतलाये गये हैं। इसके साधुसम्पादन के लिये जो काल विधानशास्त्र (ज्योतिष) को जानता है वही वस्तुतः वेद एवं वेदोक्त कर्मों को अच्छी तरह जानता है, तद्यथा

वेदा हि यज्ञार्थममिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ।।

(लगध ज्योतिष)

11.7 बोध प्रश्नोत्तर

प्र. ऋग्वेद के कितने आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं?

उ. ऋग्वेद के दो आरण्यक (1) ऐतरेय आरण्यक (2) कौषीतकि आरण्यक प्राप्त होते हैं।

प्र. सांख्यायन आरण्यक किस वेद से सम्बन्धित है?

उ. ऋग्वेदीय कौषीतकि आरण्यक का दूसरा नाम सांख्यायन आरण्यक है, अतः यह ऋग्वेद से सम्बन्धित आरण्यक माना जाता है।

प्र. बृहदारण्यकोपनिषद् का सम्बन्ध किस वेद से है?

उ. वृहदारण्यकोपनिषद् का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है।

प्र. तैत्तिरीय आरण्यक में कुल कितने प्रपाठक हैं?

उ. तैत्तिरीय आरण्यक में कुल दस प्रपाठक हैं।

प्र. तैत्तिरीयोपनिषद् किस वेद से सम्बन्ध रखता है?

उ. तैत्तिरीयोपनिषद् का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। वस्तुतः तैत्रिरीय आरण्यक का सातवां, आठवां और नौवा प्रपाठक ही तैत्तिरीयोपनिषद् कहा जाता है।

प्र. कठोपनिषद् का विभाजन किस प्रकार किया गया है?

उ. कठोपनिषद् दो अध्यायों में विभक्त है, तथा प्रत्येक अध्याय में तीन तीन बल्लियाँ हैं।

प्र. वारूणी विद्या का उपदेश किस ग्रन्थ में किया गया है?

उ. तैत्तिरीयोपनिषद् के भृगुवल्ली में 'वारूणी विधा' का उपदेश प्राप्त होता है।

प्र. माण्डूक्योपनिषद् किस वेद से सम्बन्धित है?

उ. माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित है।

प्र. प्रातिशाख्यों की गणना किस वेदाङ्ग में की जाती है?

उ. प्रातिशाख्यों की गणना शिक्षा नामक वेदाङ्ग में की जाती है।

प्र. कल्प वेदाङ्ग के कितने विभाग बतलाये गये हैं?

उ. 'कल्प' के चार विभाग माने जाते हैं (1) श्रौत सूत्र, (2) गृह्यसूत्र (3) शुल्ब सूत्र (4) धर्म सूत्र ।

प्र. व्याकरण शास्त्र के आद्य उपदेशक कौन हैं?

उ. मुनित्रय - पाणिनि - कात्यायन, पतञ्जलि को व्याकरण शास्त्र का आद्य उपदेशक माना जाता है।